भूमिका ।

शिक्षित मण्डली को यह भली भाँति विदित है कि नाटक, उपन्यास आदि लिखने का मुख्य उद्देश्य यह है कि उनसे लोगों का चरित्र संशोधित होकर समाज तथा देश का मंगल हो। परन्तु जितने काल में उपन्यास आदि एक प्रौढ़बुद्धि मननशील पाठक का चित्त अपनी ओर आकर्षण कर सकते हैं उतने वा उससे अल्पकाल में नाटक दर्शकसमाज की मनोवृत्ति अनायास तदाकार करने में समर्थ है। अतः मेरी अल्प बुद्धि में सम्प्रति औरों की अपेक्षा नाटक अधिकतर उपयोगी जान पड़ता है।

जातीयता वा जातीयएकता सामाजिक उन्नति का मुख्य द्वार है और उसका विपरीत शब्द भिन्नता वा वैमनस्य अधोगति का हेतु और उसका परमपोषक है। इन्हीं दो बातों पर लक्ष्य कर यह नाटक की पुस्तक लिखी गई है। इसका मूल आख्यान तुलसीकृत रामायण में आबाल वृद्ध वनिता सभी पढ़ते सुनते तथा जानते हैं। इसलिये इसका विशेष परिचय देना यहाँ अनावश्यक है तथा च यह भी कहना अनावश्यक प्रतीत होता है कि आमर्ष, वैरभाव, आलस्य, व्यर्थ की कल्पना आदि का क्या परिणाम होता है.

एकता में कितनी शक्ति है, "नहि योगसमं बलम्" इस योग में सांसारिक सफलता भी कितनी है, प्राणपण से पुरुषार्थ से कैसे २ अलभ्य लाभ होते हैं इत्यादि इत्यादि ।

मैं अपने इस प्रथम परिश्रम के फल को तभी उपयोगी समझूंगा जब प्रिय बन्धुगण इसका कुछ भी लाभ उठावेंगे और इसकी उपयोगिता को चरितार्थ करेंगे । अलमति विस्तरेण ।

अनन्तराम पाँड़े
रायगढ़ ।

कपटी मुनि नाटक।

नमः परमात्मने।

नान्दी का मंगलपाठ।

जाकी प्रकृति प्रभाव तें अभिनय आठो याम।
विमल बुद्धि सबकी करै सूत्रधार सोइ राम॥

(नान्दी के पीछे)

सूत्रधार—आहा! आज का भी समय कैसा मनोहर है, तिस पर इतने प्रियबन्धुओं का सहर्ष समागम! क्यों न हो, नाटक का नाम ही ऐसा चुम्बक है कि यह एक बार बड़े से बड़े एकान्तवासी उदासी के मन को भी खींच लेता है, फिर देशहितैषी संसारी जीवों की इतनी भीड़ हुई तो क्या आश्चर्य!! अहह, धन्य है उस सर्व-शक्तिमान परात्पर परमेश्वर को, कि जिसकी कृपा से अब लोगों का मनोभाव बहुत कुछ सुधर गया और भरोसा है कि यह ऐसा ही उत्तरोत्तर सुधरता ही जायगा; नहीं तो यह कब सम्भव था कि "सुरुजपुरान" तथा "बहुतालपचीसी" छोड़कर ये यहाँ आते! किरात का कवि कहता है—"हितं मनोहारि च दुर्लभं

वच:" अर्थात् संसार में ऐसा वचन दुर्लभ है जो हितकर हो और सुनने में भी मीठा लगे । पर हम कहते हैं, नहीं, ऐसा वचन कुछ दुर्लभ हो तो हो भी, किन्तु इसके सुननेवाले अत्यन्त दुर्लभ हैं । (घूमकर) उत्तम नाटक—जिसको उत्तम कहते हैं वही ऐसा वक्ता है जिसके मुंह से सदैव मीठा और उपदेशपूर्ण वचन वहिर्गत होता है ।

कहा है—

और शास्त्र सब कथनहार हैं करनहार नहिँ कोई
नाटक करके करि दिखलावे सत्यासत्य जु होई ।
इसी हेतु इसका प्रचार है सभ्यमण्डली माहीं,
ऐसे गुरु का कौन निरादर करके मूढ़ कहाहीं ॥

(फिर घूम कर) बस, अधिक कहाँ तक इसकी महिमा गावें । (कुछ ठहरकर) यह तो ठीक है, पर इन उपस्थित सज्जनों का बहुमूल्य समय अब क्यों वृथा नष्ट करें । (इधर उधर घूम फिर नेपथ्य की ओर देखकर) कोई है ?

(पारिपार्श्वक आता है)

पारिपार्श्वक—महाराज ! मैं हूं, क्या आज्ञा होती है ?

सूत्र०—(सविस्मय) आज्ञा ! (कुछ ठहर कर) इधर लोगों का समागम तो देखिये ।

पारि०—(चारों ओर देखकर) ओहो, बड़ी भीड़ है, पर प्रिय महोदय ! जरा, यह तो कृपा कर बतलाइये कि आज हमारे यहाँ इतनी भीड़ क्यों हो गई ?

सूत्र०—(हँस कर) वाह भई! (फिर दूसरी ओर देख कर) "औसर चूको डोमनी गावे ताल बेताल" (थोड़ी देर ठहर कर, पारिपार्श्वक से) अजी! सती का सा नेवता तो न करोगे?

पारि०—कैसे?

सूत्र०—देखो, आपही विचारो।

पारि०—(स्मरण करके) हाँ हाँ, ठीक, अच्छा तो, मैं घर से आता हूं (नेपथ्य के भीतर जा और लौट आकर) प्रिय महाशय! हमारा औसर कभी चूकनेवाला नहीं है, पर (कान के पास धीरे से) थोड़ी सी कसर है। महाशय! मैं सत्य कहता हूं, मुझको यह आशा नहीं थी कि इस क्षुद्र नाटक के लिये लोगों का ऐसा जमाव होगा।

सूत्र०—क्यों, स्मरण तो करो कि किस नाटक का अभिनय करते हो और उसका रचयिता कौन है?

पारि०—अभिनय तो कपटीमुनि का है पर रचयिता (याद करके) वही अनन्तरामजी हैं न?

सूत्र०—हाँ हाँ, फिर क्या आश्चर्य!

पारि०—(सिर हिला कर) बेशक, यथार्थ है, पर मुझे यह बात स्मरण न थी (लोगों को दिखला कर) प्रिय महोदय! मालूम होता है ये लोग बहुत देर से आकर बैठे हुए हैं, इसलिये बिनती है कि जब तक नेपथ्य

भली भाँति सज न जाय तब तक इन्हें कोई स्वागत-सूचक सुरीला संगीत सुनाकर प्रफुल्लित तथा उत्साहित करना चाहिए।

सूत्र०—अच्छा, आओ। (दोनों आगे बढ़ मिलकर गाते हैं)

(रामकलेवा की धुन पर)

अहा आइये प्यारे मित्रो ! बहुत दिनों में आये हैं।
सब प्रकार से धन्य आज हम हुए, मित्र मन भाये हैं।
छोड़ काम आराम सहे अति कष्ट, क्षमा कीजे प्यारे।
बिराजिये करुणा करके ह्यां, हमें न गनिये टुक न्यारे।
सब से प्रथम हमारा शिष्टाचार यथोचित है लीजे।
लघु गुरु प्रिय भ्राता भगिनीगण। प्रेम सहित आसिस दीजे।
अहो देश के प्रिय सन्तानो ! स्वागत आप सबों का है।
धन्य आप की उदारता, जो दुखियों की जल नौका है।
हैं अयोग्य हम, दूध दाँत अब तक न झरे हैं, लखिये तो।
किस विधि से तब करें आप की स्वागत सेवा, कहिये तो।
बार बार के साहस से जो विनती जी में भरती है।
प्रगट यथारथ नहिँ होती है, बाल भारती डरती है।
इस कारण हे मित्रवरो ! जो भूल चूक भी हो जावे।
आप समर्थ, सुधार लीजियेगा, जिससे सबको भावे।
यद्यपि यह आनन्द दिवस है, रंचक भी सन्देह नहीं।
तौभी अपनी बुरी दशा पर होती है चिन्ता अतिही।

ज़रा याद कीजे तो प्यारे ! हम सब पहिले कैसे थे ।
है कुछ भी अन्तर. कि जैसे वर्तमान है वैसे थे ।
यदि एकान्त में बैठ आप इसको तुलना कर देखेंगे ।
सेर पसेरी के अन्तर से भी बढ़कर के लेखेंगे ।

हम भी पहिले की बातों का स्मरण कभी जो करते हैं ।
सच कहते हैं प्यारे मित्रो ! नेत्रों में जल भरते हैं ।
हाय ! कहाँ वह धर्म आचरण. कहाँ गया वह बल विक्रम ।
कहाँ हमारी विद्यादेवी जिसे देख भगता था भ्रम ।
वही हमारा पुण्य देश है, वही आर्यकुल बसते हैं ।
फिर किस कारण मधुमक्खी से सारहीन हो मरते हैं ?
अस्तु, कहाँ तक कही जाय अपने दुखसागर की कथनी ।
धन वैभव की बात कहाँ, अब बची न घर नथनी मथनी ।
आप सबों के रहते प्यारे ! हमें भला क्या चिन्ता है ?
मातपिता के रहते कोई बालक को क्या गिन्ता है ?
चले रहे स्वागत करने को, मनोव्यथा थी निकल पड़ी ।
क्षमा करेंगे क्षमासिंधुगण ! है अनुचित यह ढीठ बड़ी ।
किस औसर में क्या कहना है, भला कौन बतलाता है ?
अतः जभी जो मन में आया वही हमें कहलाता है ।
क्या ऐसा भी दिन आवेगा स्वप्न में भी आगे को ।
देख सकें जब हम आखों से रक्षित देश अभागे को ।
ऐसी युक्ति बताओ, प्यारे ! जिस्से शुद्ध हृदय भीतर ।
बरसै विद्यावारि सर्वदा बीज एकता के ऊपर ।

अहो देश के प्यारे मित्रो ! इसी हेतु यह स्वागत है।
आपहि कहनेकरनेवाले हम्में कुछ नहिँ ताकत है ।

(नेपथ्य में)

बस बहुत हो गया, इधर भी देखिये, सब लोग सज कर उद्यत हैं ।

सूत्र०—अच्छा तो, (पारि० से) चलो (दोनों जाते हैं)

इति प्रस्तावना ।

प्रथम अङ्क ।

(राजा चन्द्रसेन का घबराया हुआ जंगल में भागना)

चन्द्रसेन—बस, अब कहाँ ! हम तो महारण्य में पहुंच गये, अब दो एक को पावें तो हमी अकेला काम पूरा कर दें। (इधर उधर डर से देख) क्या आहट आती है ! (छिप कर देखता सा है) नहीं २, कुछ नहीं, यह सब हमारे मन का भ्रम है। अरे, उसको भी तो डर है ! ऐसा अन्याय ! ऐसा बलात्कार ! क्या कहें, हमारा सेनापति विजयबाहु न रहा, नहीं तो ऐसों वैसों को हम किस खेत के मूली गिनते थे। (सिर पर हाथ मार) क्या करें, विजयलक्ष्मी ही जब हमसे रूठी है तो लाख करें क्या होता है ! जो हो, नीति में लिखा है कि "आत्मानं सततं रक्षेद्दारैरपि धनैरपि" वही हमने

किया। प्राण के लिये स्त्री पुत्र राज्य धन सब का त्याग किया। ईश्वर अब इनकी रक्षा करे। हमको तो अब यहीं रहना है। (ऊपर की ओर देखकर) हे ईश्वर! तूही सब का रक्षक है। यहाँ वहाँ सब जगह एक तूही है। अब हम तेरी ही चाकरी करेंगे। (गाता है)

भूपाली—

करेंगे वास हम अब तो यहीं पर ।
बदल के रूप को कुछ दिन यहीं पर॥
हमारी यह दशा भानुप्रतापने की।
छोड़ घर द्वार को आये यहीं पर ॥
धैर्य्य ही के लिये छाती बनी है।
भला देखें उसे धर के यहीं पर॥
हुआ सो हो गया अब क्या यतन है।
करैं जो कुछ हमें भावे यहीं पर॥
न्यायान्याय वही देख रहा है ईश्वर।
हुए इस वक्त ते योगी यहीं पर॥
खैर कुछ डर नहीं जीवन बचा है।
चलो होता है क्या देखें यहीं पर॥

यथार्थ में हमारी ही भूल हुई जो अपने सेनाबल को

ओर उचित ध्यान न दिया। राजाओं को चाहिए कि अपनी तथा देश की रक्षा के लिये बल का कभी ह्रास न होने दें। राजा के जितने मित्र होते हैं उतने ही शत्रु होते हैं। बल से रिपु का दमन शीघ्र होता है, छल से भी होता है पर देर में। (कुछ सोच कर) हम कहते हैं—हमी को यह विपत्ति है. सो नहीं, हमारे सरीखे कालकेतु, चन्द्रकेतु, वज्रबाहु, प्रचण्डासुर, शंखध्वज, सूर्यसेन इन सब को यही दुःख है। बिचारे कालकेतु का तो सर्वस्व नाश हो गया। सुना है वह भी इसी जंगल में रहता है। यदि ईश्वर की इच्छा से भेंट हो गई तो दोनों कुछ करके ही उठेंगे। और क्या! सब तो छूटा, अब या तो भानुप्रताप का सर्वनाश कर अपना बदला लेंगे या यहीं प्राण विसर्जन करेंगे। (घूम कर) चलें, कोई जगह ढूंढ़ें (चौंक कर) अरे, किसी के पाँव की आहट आती है (छिपता है)

(कालकेतु का प्रवेश)

काल०—(आपही आप) बस, अब क्या चिन्ता है, भूतनाथ महादेव ने मुझको बरदान दे दिया है। अब जो चाहे सो रूप धारण कर सकता हूं। रे नीच भानुप्रताप! तूने मेरे सौ पुत्रों और दसो भाइयों को मार डाला, अच्छा किया, पर तूभी अब सावधान हो जा। (मत्त की तरह चेष्टा करता हुआ नाचता और गाता है)

भजन ।

मैं सीस नवाऊँ उसी भबूती बाबा को, मैं सीस० (टेक) सदा बैल पर आवै जावै उसी भबूती बाबा को। मैं०। जैसे मैंने कीनी सेवा, वैसे पाया मेवा, प्रेम लगा के जो कोइ सेवै उसको ही फलदेवा को ॥ मैं० ॥ ऐसा है वह औढर दानी, जोगी बड़ विज्ञानी, बुझा दिया है जिसने मेरी तेज धधकती दाँवा को॥ मैं सीस० ॥ भानुप्रतापू कहाँ बचेगा जो नाच नचाऊँ नाचेगा, उस शूली की करुणा से अब भर भर लूंगा दावा को ॥ मैं सीस न० ॥

अब मैं पहिले का कालकेतु थोड़ा ही हूं! (पेट छूकर) अरे, अब तो भूख लग आई! भला और बात के लिये कुछ परवाह नहीं, पर भूख प्यास तो साथ ही है। (आगे देख कर) ओहो, देखो यह वृक्ष कैसा फला है, मानो भगवान खण्डपरशु ने यह फलयुक्त वृक्ष मेरे ही लिये साम्हने ला रक्खा है, चलूं, फिर क्यों देर करूं? (जिधर चन्द्रसेन छिपा है उधर ही जाता है और उसे चन्द्रसेन पहिचान कर प्रगट होता है)

चन्द्रसेन—अहह, मित्र कालकेतु तुमही हो? (दौड़ कर आलिंगन करता है)।

काल०—हाँ महाराज! (चरणों में गिरता है)

चन्द्र०—मित्र कालकेतु! आज हमलोगों का पूर्वार्जित

भाग्य उदय हुआ जो यह भेंट हुई। पर विधाता वाम है, क्या किया जाय ? (गद्गद स्वर से)

काल०—क्या महाराज, क्या बात है ? (आश्चर्य से)

चन्द्र०—क्या कहूं, प्यारे कालकेतु ! उसी अन्यायी भानुप्रताप ने मेरी यह दशा की है । अभी की बात है, उसने मुझ पर अकारण ही चढ़ाई की। मैं असावधान था तथापि चौदह दिन पर्य्यन्त सामना किया । निदान परास्त हो गया। निन्दा के मारे घर न लौटा। स्त्री पुत्र राजपाट सब गया।

काल०—(मन में) हाय, रे विधाता ! तेरी क्या ही उलटी रीति है ! (सशोक)

कवित्त।

जाको एक बार निज कर तें सँवारि ढारे, ताही को अचानक ही धूर में मिलावै तू। जाको चक्रवर्ती महाराजा तू बनावै ताहि, करकै अनाथ वन वन को फिरावै तू॥ एहो जू अनन्त प्रभु का यह तिहारी बान, अनरीत करकै क्यों जग में हँसावै तू ?। नीचे तें चढ़ावै तो चढ़ावै भलें ऊपर पै, ऊपर चढ़ाय जनि नीचे को गिरावै तू॥

महाराज। मैं आपकी यह दशा देख बड़ा ही दुःखी हूं। आप सरीखे साधु राजा का भी वही शत्रु हुआ ?

चन्द्र०—प्यारे कालकेतु ! दुःख सुख सब स्वकर्माधीन है इस पर वृथा ईश्वर को दोष देना उचित नहीं। (कुछ ठहर कर) मित्र ! तुमसे मिलने की बड़ी उत्कण्ठा थी सो उस अन्तर्यामी ने पूरी की। अब कोई ऐसा उपाय करें जिससे उस हत्यारे भानुप्रताप का सर्वस्व नाश हो और अपना पूरा २ बदला मिले।

काल०—अवश्य करना चाहिये। मैं भी इसी चिन्ता में हूं। अब शोक को दूर कीजिये, कहिये, कौन सा उपाय करना चाहिए ?

चन्द्र०—भाई ! सुनो, हमलोग बल से तो नितान्त हीन हैं, क्योंकि न तो शारीरिक बल है न सामरिक ही। केवल छल बल शेष है सो इसी से उसकी जड़ हिलानी चाहिए। पीछे......

काल०—(जल्दी से) बस महाराज, मैं अब जाता हूं उसे छल करके यहीं लाता हूं।

चन्द्र०—भाई कालकेतु ! ऐसा न करो, जल्दी से काम बिगड़ता है। आओ, पहिले खूब सोच विचार लें कि किस प्रकार कार्य में प्रवृत्त होंगे।

काल०—महाराज ! कुण्डलिया।

मैं गिरिजापति शम्भु सों पायो है बरदान।
रूप चहौं जो धरि सकौं, सकैं न कोई जान॥

सकैं न कोई जान, करूँ क्या अभी बड़ाई ।
तब जानोगे आप, लाउँ जब ताहि भुलाई ॥
जब वह वश में आय, करैं जो आवे मन में ।
अवशि करौं यह काल, प्रगट वरदान लह्यो मैं ॥

बस, आज्ञा दीजिये। (जाने को घबराता है)

चन्द्र०—(मन में : जब ऐसा है, तो अवश्य यह सफलता प्राप्त करेगा। रोक कर) अच्छा, यह तो ध्यान में आया न, कि मैं कहाँ हूं, यह पर्वत, यह बड़ा पाकर का वृक्ष, इन्हें खूब ख्याल में रखना। मैं यती का भेष ले कर यहीं रहता हूं।

काल०—मैंने सब ध्यान में रख लिये, आप यहीं रहिये।
(जाया चाहता है।)

चन्द्र०—भाई कालकेतु! काम बड़ी होशियारी से करना, जिस से हमलोगों को...... .....

काल०—अजी! अब सात जन्म लें तौभी हमलोगों का भेद किसी को नहीं मिल सकता।

चन्द्र०—मित्र! जाते हो, उधर से मेरे राज्यपाट स्त्री पुत्र का समाचार भी लेते आना, जिससे मन को शान्ति हो। जहाँ तक हो सके यह वह दोनों काम शीघ्र हों, विपत्ति में मित्र ही सहायक होता है।

काल०—बहुत अच्छा, मैं जाता हूं, आप सावधान होकर रहिये (प्रणाम करता है)

चन्द्र०—जाओ जाओ, ईश्वर तुम्हारी रक्षा करे।

(कालकेतु का प्रस्थान।)

चन्द्र०—(उसको देखते हुए मनही मन) मुझ को सोलह आने विश्वास हो गया, कालकेतु अपना वचन अवश्य पूरा करेगा। देखो न, पखेरू का सा उड़ता चला जा रहा है। सच है, जब तक किसी भी गुण का बल नहीं आता तबतक जितना साहस जितना बल करो, मुंह से बात तक नहीं निकलती. घड़े में पानी रहता है तभी गंभीर होता है, ढोल में चमड़ा मढ़ा रहता है तभी बोलता है, आकाश में बादल रहता है तभी गरजता है, कुत्ते भागने में तेज होते हैं तभी भोंकते हैं, मियां लोग कुछ जानते हैं तभी एक एक को दो दो हाँकते हैं। अच्छा, अब चलूं मैं भी अपनी कुटीर का प्रबन्ध करूँ (एक तरफ जाता है) (परदा गिरता है)

इति प्रथम गर्भाङ्क।

अथ द्वितीय गर्भाङ्क।

(राज-सभा)

(राजा भानुप्रताप, धर्मरुचि मन्त्री तथा सभासद गण यथास्थान बैठे हुए हैं।)

राजा—(मन्त्री से) मन्त्री जी! अब तो कोई ऐसा राजा न बचा जो अपने से द्वेष रखता हो?

मन्त्री—जी महाराज! प्रायः सब वशीभूत हो गये।

राजा—"प्रायः सब?" क्या कोई बचा है?

मन्त्री—हां, दो जने भाग गये हैं न, वेही तो राज्य के पूरे शत्रु हैं, क्योंकि कर्कशा स्त्री, भ्रातृविरोध, मूर्खता, दरिद्रता तथा मानहानि के समान वंचित शत्रु भी दुखदायी हैं।

राजा—कौन कौन हैं भाग जानेवाले?

मन्त्री—महाराज पहिले तो कालकेतु भागा, पीछे हालही में चन्द्रसेन। मुझे इन दोनों का बड़ा भय है।

राजा—कालकेतु जब से भागा है तब से कुछ पता ही नहीं कि क्या हुआ, कहाँ है, कदाचित् उसने अपने पुत्रों तथा भाइयों के मारे जाने से जंगल में आत्मघात न कर लिया हो। अलबत्ता चन्द्रसेन है। हमने उसके श्वसुर चन्द्रवीर को बुलवाया है।

मन्त्री—महाराज! वैरी, ऋण, पावक और पाप को सा-

त्तात् काल जान अपने हाथ से अच्छी तरह नाश करना चाहिये। देखिये, खाली सिर जिसको राहु कहते हैं अबतक चन्द्रमा तथा सूर्य को दबा लिया करता है! मैंने कोतवाल को आज्ञा दे दी है कि वह इन दोनों को खोज और पकड़ कर शीघ्र हाज़िर करे। चन्द्रवीर का बुलवाया जाना बहुत अच्छा हुआ, भली भाँति चितावनी दे दी जावेगी और नहीं तो अपने दामाद का कभी न कभी पता तो बतलावेगा।

राजा—हाँ हाँ, वही तो एक उसका आधार है।

द्वारपाल—महाराज! राजा चन्द्रवीर जिसके लेने को अश्वारोही गया था आ गये। आज्ञा हो तो भीतर लाये जायँ।

राजा—देखो, आही गया (द्वारपाल से) अच्छा लिवा लाओ।

द्वार०—जैसा हुक्म हो (जाता है और राजा चन्द्रवीर को साथ लेकर आता है)

(राजा चन्द्रवीर का प्रवेश)

राजा—आओ, चन्द्रवीर जी! क्या अभी आ रहे हो?

चन्द्रवीर—महाराज! कुछ कहा नहीं जाता और विना कहे रहा भी नहीं जाता। अपराध क्षमा हो, क्या मैं महाराज का ऐसा बड़ा दोषी हो गया कि बन्दी से भी बढ़ कर!

राजा—समय पर ऐसा और इससे भी बढ़ कर कष्ट सहना पड़ता है। इस शीघ्रता का कारण है। आओ बैठो तो

चन्द्रवीर—(बैठता है)

राजा—मैंने आपको इसलिये बुलवाया है कि......

चन्द्रवीर—(कान देकर) महाराज! मैं थोड़ा ऊँचा सुनता हूं। कहिये, क्या आज्ञा है?

राजा—(ज़रा जोर से) तुम लोग राज्य का आश्रयस्तम्भ कहलाते हो, तुम्हीं लोग जब हमसे कपट व्यवहार करते हो तो दूसरें क्यों न करेंगे?

चन्द्रवीर—महाराज! जब से मैंने आपकी सेवा स्वीकार की है तब से मैंने अपने जान कोई छल कपट का काम नहीं किया है। सदैव श्रीमान् तथा राज्य का शुभचिन्तक रहा हूं और रहूंगा। मेरे मन में जो बात है उसे ईश्वरही जानता है।

राजा—हमको भी यही विश्वास है कि तुम जो कहते वही करते हो, पर आश्चर्य की बात सुनने में आती है कि तुमने हमारे शत्रु चन्द्रसेन को अपने यहाँ छिपा रक्खा है

चंद्रवीर—(साश्चर्य) महाराज! आपके समाचार देनेवाले सेवकों का वृथा बहाना है। वे लोग चाहते हैं कि किसी प्रकार मेरे औ आपके बीच शत्रुता खड़ी कर श्रम और आयास से रक्षा पावें।

राजा—नहीं, नहीं, ऐसा कदापि नहीं हो सकता। हमारे आज्ञाकारी सेवकों का दोष नहीं है। तुम्हारे इस उत्तर से यही निकलता है कि तुमने अवश्य उसे छिपा कर रक्खा है। यथार्थ में जब ऐसा है और तुम अपनी भलाई चाहते हो तो उसे शीघ्र यहाँ उपस्थित करो।

चंद्रवीर—स्वामी की इच्छा जो चाहें कहें, बन्दी तो बनेही हुए हैं!

मंत्री—(चंद्रवीर से) देखिये. स्वामी को ऐसा रूखा उत्तर नहीं दिया जाता है. आपको अपना जान कर कहा जाता है कि यदि वह आपके यहां हैं तो कहिये, जैसे आप श्रीमान् के आश्रित हैं वैसा वह भी रहेगा, उसका राजपाट उसे लौटा दिया जावेगा। शत्रु का गुप्त होकर रहना अच्छा नहीं है। कदाचित् आप यह समझते हों कि यदि भेद खोल दूं तो राजा मुझे दंड देगा, सो ऐसा न समझिये, आपको कुछ डर नहीं है।

चन्द्र०—भला यह तो बिचारिये कि मैं जान बूझ कर क्यों विपत्ति को बुलाऊँगा, क्या मुझे इतनी भी बुद्धि भगवान ने न दी!

राजा—अच्छा, यह बतलाओ कि उसकी स्त्री अर्थात् तुम्हारी लड़की तुम्हारे यहाँ है कि नहीं?

चंद्र०—हाँ, मेरी लड़की अपने नन्हे बच्चे को लेकर भाग

आई है, वह भी नहीं जानती कि चंद्रसेन किधर चला गया।

मंत्री—क्यों जी ! जब उसकी स्त्री तथा लड़का तुम्हारे यहाँ हैं तो वह क्यों न होगा ? क्या कोई स्त्री पुत्र की ममता भी छोड़ सकता है ?

राजा—भैय्या ! वृथा मत बातें बनाओ, साफ प्रगट है कि चंद्रसेन तुम्हारे यहाँ है। तुम छिपाते हो तो आगे पीछे खूब सोच समझ कर छिपाओ।

चंद्र०—महाराज ! मिथ्या मुझ को दोषी न ठहराइये। मैं सौगन्ध खाकर कहता हूं चन्द्रसेन मेरे घर नहीं है, तौभी यदि श्रीमान् को विश्वास नहीं आता है तो घर द्वार सब श्रीमान् का है मनमाने ढुंढ़वा लें, कहें तो मैं तबतक यहीं रहूं।

राजा—अच्छा, अभी नहीं है, कभी था ? आया जाया करता है ? कि कभी आया ही नहीं ?

चन्द्र०—महाराज ! विश्वास लावें, वह कभी मेरे यहाँ नहीं आया न आता है।

राजा—तब कहां है ?

चन्द्र०—महाराज, मैं क्या जानूं कि कहां है, हाँ मेरी लड़की कहती थी कि लड़ाई में परास्त होकर जंगल की राह ली है।

मंत्री—क्या अब तक जंगल ही में है? बड़ी आश्चर्य की बात है!

राजा—अच्छा, उसकी स्त्री को हाज़िर करो, सब हमारा काम हो जायगा।

चन्द्र०—महाराज! उस पर मेरा अब कुछ अधिकार नहीं है। आपकी इच्छा, जो चाहें सो करें, पकड़ मगावें, मारें पीटें फाँसी दें।

मंत्री—स्त्री ने हमारा क्या बिगाड़ा है यह कोई बात नहीं

राजा—(मन में) यह तो सूखा जवाब देता है, खैर कहां जावेगा (प्रगट) अच्छा, हमको तो झूठ सच सब तुम्हारी बातों ही से मालूम हो गया पर खबरदार, हमारे अनुचरगण तो अनुसन्धान में लगे ही हुए हैं कहीं उसका तुम्हारे यहां अथवा तुम्हारे बल से कहीं पता लग गया तो स्मरण रक्खो तुम तुम्हारे बाल बच्चे एक भी न बचने पाओगे अच्छा जाओ (ज़ोर से) कोई है? कोतवाल को बुलाओ।

चन्द्र०—महाराज! जो आज्ञा (उठता है)

मंत्री—(धीरे से चन्द्रसेन को अपने निकट बुलाकर) सुनिये, महाराज के कहे पर बुरा न मानना चाहिए। आप मालिक होते हैं। यदि अब कभी चन्द्रसेन आप के यहां आवे तो किसी प्रकार से उसे आप हाज़िर कर देवें, तब फिर कुछ डर नहीं है।

चंद्रवीर—(मन में) इन लोगों ने मुझे भकुआ ही बना डाला (प्रगट) बहुत अच्छा ।

(चन्द्रवीर का प्रस्थान और कोतवाल का प्रवेश)

कोत०—(शिष्टाचार कर एक तरफ खड़ा हो जाता है)

राजा—(कोतवाल से) चंद्रसेन और कालकेतु इन दोनों का अच्छी तरह पता लगाओ । राजा चन्द्रवीर चन्द्रसेन का श्वसुर है उसके नगर के आसपास ऐसे ऐसे चतुर भेदिए रक्खो जो कभी चन्द्रसेन वहां आवे तो तुरन्तु यहां सूचना दें । कालकेतु का तो कोई नहीं है ।

को० - महाराज ! खबर लगी है कि शिलांग देश में कोई उसका मामा जयजीत नाम का रहता है । मैंने वहां का पता ले रक्खा है और योग्य दूत भी नियत कर रक्खे हैं ।

मंत्री—महाराज, यह सब प्रबन्ध अच्छा ही हुआ । अब प्रार्थना है कि श्रीमान् तथा राज सहोदर सदैव सतर्क रहें किसी की बात में न आवें । ऐसा न हो कि किसी वक्त कुछ दुर्घटना हो जाय । ईश्वर की कृपा होगी तो दुष्टों का अब शीघ्र मरण होगा ।

राजा—हाँ, ठीक है । (कोतवाल से) देखो, प्रबन्ध ठीक रखो भला ! एक विज्ञापन भी कर दो कि जो कोई इन दो भगोड़ओं को पकड़ेगा उसे योग्य पुरस्कार तथा जागीर मिलेगी ।

कोत०—जो आज्ञा (विज्ञापन लिख और राजा की सही लेकर जाता है)

(राजा और मंत्री उठ कर एक तरफ जाते हैं)

(जवनिकापतन) इति द्वितीय गर्भाङ्क ।

इति प्रथम अङ्क ।

अथ द्वितीय अंक ।

स्थान—नदी के किनारे देवालय के पास बगीचे में पण्डित के भेष में कालकेतु घूमता हुआ भैरवी गाता है ।

भैरवी । शिव को नाम सजीवनमूर ।

शोक मोह भ्रम रोग वधन को यही अकेला शूर ॥

खल्ल सील का काम नहीं है, न कपड़छान की धूर ।

बिन अनुपान बतावे सबको मुक्ति लाभ भरपूर ॥ १ ॥

सहज न दीख पड़े वेदों को नाशे सकल गरूर ।

सभी ठौर वह उगा हुआ है बिना चन्द्रमा सूर ॥ २ ॥

शुद्ध एक रस सदा रहै वह कभी न होता चूर ।

मुंह के परते वात पित्त कफ सब कर देता दूर ॥३॥

यम नियमों का सब्बल लेके आत्मज्ञान उर पूर ।

प्रनव शक्ति से प्राप्त करो पर चोरवा करो मजूर ॥४॥

(उस) ऊर्द्धमूल का सरस रसायन तुम खोजो यहाँ जरूर ।

ऽनन्त उसी आधार साधुजन रहैं सर्वदा चूर ॥ ५ ॥

(पूर्व की ओर देख कर) अरे, बड़ी देर हो गई। भगवान भानु की प्रभा अब देखो शरीर पर लगने लगी। हाय! भानुप्रताप के आतप से हमीं नहीं, कई, बस सभी दुःखित हैं (शा०हि) देखो, भानुप्रताप आतप, पुरी-पूर्वीय आकाश में। (हिं) कायर जीव खुशामदी चहुंदिशा जै जै मचाने लगे।

दुर्दिन देखि अपार जे तम-रिपू घर बन दरी में दुरे।

तेऽपी साँझ समै पुनर्विजय का डंका बजावैं प्रगट्।

इसी प्रकार हम अपना दाँव देख रहे हैं (इधर उधर घूम कर) शिव जी की पूजा तो हो गई चलो, अब राजा को छकावैं। हमको इस समय जैसी शक्ति प्राप्त है उस से तो हम बात की बात में उसको नाक में दम कर सकते हैं परन्तु नहीं, अन्याय से पाप होगा।

चौपाई।

हम क्षत्रिय का धरते बाना। धर्मयुद्ध बिन करैं न आना॥
गुप्त होय वैरी जो मारै। पाप अनल तन मन-वन जारै॥
प्रबल बली से काल छल करते। वश में कारके सम्मुख लरते॥
प्रतिद्वन्दी से करैं लड़ाई। प्रगट दिखावैं निज मनुसाई॥
निर्बल रिपु चाहैं जब जैसे। तिनसों युद्ध करैं हम तैसे॥

सोरठा।

प्राण रहै वा जाय, करैं न धर्म विरुद्ध हम।
सब तें मुख्य उपाय, तजैं न कोई धर्मयुत॥

चलो अपना काम देखें (आगे चलता है पर एक पण्डित को आगे अपनी ओर आते देखकर पुनः मनही मन) अरे! इसने मेरी बात तो न सुन ली और अपना मतलब तो न जान लिया (प्रगट) कहो! पण्डित जी नमस्कार!

पण्डित—नमस्कार, नमस्कार, कहाँ शिवभजन!

काल॰—भाई जी, मैं शिवभजन नहीं हूं। मेरा नाम कालिकादत्त है, परदेशी हूं।

पण्डित–(पास आकर) महाराज! मेरा दृष्टिदोष क्षमा करेंगे।

काल॰—कुछ चिन्ता नहीं, ऐसा सब से हो जाता है।

पण्डित—कहिये, आपका जन्मस्थान कहां है और कब से यहां आये हुए हैं?

काल॰—जन्मस्थान तो बंगदेश है और आया कल शाम को यहां।

प॰—क्या राजा से भेंट करने का विचार है?

काल॰—हाँ महाराज! यही तो मेरे भाग्य का लेख है।

(व॰ यि॰)—कोई मिला न जग में मुझ को सु राजा,
कैसे निभै अब तु धर्म सुब्राह्मणों का।
संसार स्वार्थ रत है न सुनै पराई,
आशा मरै न दुःख कटै........द्विज देवताजी॥

पण्डित जी आप तो यहां के निवासी हैं कृपा कर के

यह तो बतलावें कि यहां का राजा विद्वान्, पण्डित, साधु, अभ्यागत को कैसा मानता है।

पं०—भाई! मैं यहां का रहनेवाला नहीं हूं। यहां मुझे एकही रोज हुआ है तथापि मैं कह सकता हूं कि यह राजा न्यायी नहीं है फिर—

जहाँ न्याय, तहँ धर्म है, जहाँ धर्म तहँ मान ।
जहाँ मान विद्वान—का, तहाँ सदा कल्यान ॥

आप तो पण्डित हैं जान सकते हैं कि "चमकनेवाले सब सोने ही नहीं होते" मुझे आप का इतनी दूर आना निष्फल प्रतीत होता है।

काल०—(मन में) यह तो किसी पुराने वैद्य का अर्क खींच रहा है (प्रगट) महाराज! मेरा भाग्यही ऐसा खोटा है कि जहाँ जाता हूं वहाँ दुराशा ही प्राप्त होती है। पर एक बात है यदि आप बुरा न मानें तो कहने का साहस करूँ।

पं०—कहो न, इसमें क्या डर है।

काल०—पण्डित जी! इतने बड़े महाराजाधिराज छत्रपति के गुण कर्म स्वभाव की परीक्षा भला एक ही दिन में क्योंकर कोई कर सकता है?

पं०—यथार्थ, तुम्हारा कहना ठीक है, कोई नहीं कर सकता। पर जानते हो, बटलोही में के एक ही चाँवल

की परीक्षा की जाती है सब की नहीं। इसी प्रकार राजा की एक ही बात पर से मैंने अनुमान कर लिया कि वह कैसा है।

काल०—कौन सी बात?

पण्डित—वह बात यह है:—

चन्द्रसेन वाल्हीकदेश का राजा था सुखसाज।
इस राजा से हार कहीं वह गया छोड़ के राज॥
शत्रु जान उसे ढुंढ़वाता है वह देश विदेश।
जो पावै तो नाश करावै निर्भय रहे हमेश॥
महाराज सौराष्ट्रदेश का चन्द्रवीर है नाम।
मैं उसका पण्डित हूं, मेरा सदा भूप सँग काम॥
मैं भी आया साथ नृपति के, उरमें अतिसन्ताप।
पकड़ मँगाया चन्द्रवीर को राजा भानुप्रताप॥
चन्द्रसेन का श्वसुर हमारा राजा है विख्यात।
उसे जमाई के बदले में देता दुख दिन रात॥
सभा बीच कल उसे वृथा धमकाया बहु करि दर्प।
"चन्द्रसेन है तेरे घर में उसे यहाँ ला सर्प॥"
'नहीं जानता, वह खल मेरा है रिपु छली महान
ला उसको तू अभी, नहीं तो, मारूँ खैंच कृपान॥'

का०—(विस्मयपूर्वक) ऐसा है तब तो यह हमारी क्या सुनेगा, इसे तो रातदिन केवल स्वार्थचिन्ता ही से अवकाश न मिलता होगा। क्यों भाई! आपके राजा ने क्या उत्तर दिया ?

पं०—महाराज ने साफ कह दिया "चन्द्रसेन मेरे यहाँ नहीं है, सरकार ढुंढ़वा लें। हाँ उसकी स्त्री अपने बच्चे को लेकर डर के मारे चली आई है।"

का०—क्यों पण्डित जी! चन्द्रसेन की रानी औ राजकुमार सचमुच आप के यहाँ हैं ?

पं०—हाँ, हमारे ही यहाँ है। भला वे कहाँ जाँय ? राजपाट छीना गया, राजा चन्द्रसेन कहीं मर गये कि क्या हुए कुछ पता नहीं, लड़की पिता के घर टुकड़े तोड़ती पड़ी है।

का०—अहह! उस राजा पर महाविपत्ति पड़ी। ईश्वर की लीला बड़ी विचित्र है।

पं०—यथार्थ है, पर यह तो देखो कि उसके लिये निर्दोष हमारे राजा भी गेहूं के साथ कीड़े रगड़ा रहे हैं।

का०—भाई ऐसा ही होता है क्या किया जाय!

पं०—अच्छा आज्ञा हो तो मैं जाऊँ, देर हो गई और आज ही अपने नगर को लौट जाना है। (जाता है)

का०—अच्छा, जाइये, मैं भी राजा से, जाता हूं, अपने भाग्य की परीक्षा करता हूं। नमस्कार!

पं०—(फिर कर) नमस्कार, मैंने जो इस राजा की बात कही उसे यहां के किसी मनुष्य से न कहना। आपको अपना भाई समान जान कर कही है।

का०—शिव शिव शिव! (कान छूकर) कदापि नहीं, भला ऐसी बातें भी कही जाती हैं।

पं०—हाँ ऐसाही चाहिए। (पण्डित का प्रस्थान)

का०—(मन में) चलो, एक काम तो हुआ। प्यारे चन्द्र-सेन की महारानी तथा राजकुमार का समाचार तो मिल गया, नहीं तो वहाँ भी जाना पड़ता। बस, चन्द्रशेखर की कृपा है। मालूम होता है अब हमलोगों का दिन फिरा। भला, परिश्रम से क्या नहीं होता! अच्छा तो चलूं मैं भी राजमन्दिर को (जाता है)

इति प्रथम गर्भाङ्क।

स्थान—दरबार, राजा, मन्त्री, अरिमर्दन, गन्धर्वराज आदि यथास्थान बैठे हुए।

राजा (गन्धर्वराज से) कहो तुम कौन हो और कहां से आते हो ?

गन्ध०—महाराजाधिराज! मैं हयग्रीप का पोता अलका-पुरी से आता हूं। मैं अपनी बड़ाई मारकर अपने मुंह मियाँ मिट्ठू नहीं बनना चाहता। मैं गाता हूं पर अ-

केला। छः राग छत्तीसों रागिनियाँ मेरे पीछे २ घूमा करती हैं। सिवाय इसके मैं अप्सराओं का संसर्ग नहीं रखता।

राजा—(आश्चर्य मान कर) क्यों, क्या अप्सराओं का गाना सुनना अच्छा नहीं है ?

गन्ध०—नहीं, अच्छा है, पर आप सरीखे धर्मनीति के पालनेवाले क्षत्रियकुलदीपक को यह सोभता नहीं। क्योंकि गान से प्रकृति नरम, चोमट और मुग्ध हो, जिधर झुकाओ, उधर ही झुक जाती है, तिस पर स्त्रियों के मुंह से सुनने से वही प्रकृति अधिकतर कोमल हो वलिष्ट वीर्य्य को तरल कर देती है जिस से पौरुष पराक्रम का क्षय हो जाता है।

राजा—तब, सच्चा संगीत किसे कहना चाहिए ?

गन्ध०—सुनिये महाराज सच्चा संगीत यह है:—

मनोमुग्धकारी होता संगीत है ।
चिन्ताहर्त्ता सुखदाता संगीत है ।
परमेश्वर का स्मरण करण संगीत है।
धर्म और चितआकर्षक संगीत है ।
भ्रमित जनों का पथदर्शक संगीत है।
द्वेष कपट का उत्पाटक संगीत है ।

नई शक्ति का संचारक संगीत है ।
आत्मा को उत्तेजक भी संगीत है ।
उत्तम गति का सन्दायक संगीत है ।
सुरुचि सुकविकृत सरल गम्य संगीत है ॥

राजा—यथार्थ है, अच्छा कुछ सुनाओ ।

(कालकेतु का किसी परिचित दरबारी के रूप में आकर बैठना और उठकर बाहर निकल जाना, पुनः रनिवास की ओर घूमना)

गन्ध०—क्या गाऊँ ?

राजा—कोई छोटी चीज़ सुनाओ (घर में धुआँ समाता देख कर, मन में) अरे ! यह कहाँ का धुआँ हैं (फिर कुछ ध्यान न कर) अच्छा तो आरम्भ हो ।

गन्ध०—महाराज, बहुत अच्छा । (अलापता है)

देश—अरे मन समुझि समुझि पग धरिये ।
इस जग में अपना नहिँ कोई परछाईं सों डरिये ॥

राजा—(घर में धुआं भरता हुआ देख कर मनही मन आश्चर्य करता है)

गन्ध०—"दौलत दुनियाँ कुटुंब कबीला इनसों नेह न करिये
ईशनाम सुखधाम जगतपति सुमिर वेग जासों तरिये"

(नेपथ्य में आग लगने का घोर कोलाहल)

राजा—(ससंभ्रम खड़े होकर) अरे यह क्या हो गया !

॥ कंचुकी का घबराया हुआ आना ॥

कंचुकी—महाराज, दोस क्षमा हो रनिवास में आग लग गई। महारानी जी बड़ी कठिनाई से बचीं हैं। आनंदभवन में, सब पदारथ जल गया, दौड़िये दौड़िये बचाइये बचाइये। नउकर चाकर कउनो नहीं।

(सभा भंग, राजा मंत्री आदि सब दौड़ते हैं)

राजा—(लौट आकर) आप ही आप। यह सब कोतवाल की असावधानता का कारण है। यदि प्रबन्ध ठीक होता तो क्या शक्ति थी, कोई भीतर आ सकता और ऐसा उपद्रव करता। सिवाय इसके दुष्टों पर उसकी आँख भी नहीं है। हमीं सब बातों का कहाँ तक प्रबन्ध रक्खें (कुछ देर चुप रह कर) हो न हो, राज्य में कहीं अधर्म हो रहा है।

मन्त्री तथा कोतवाल का प्रवेश।

कोत०—महाराज। आग बिलकुल बुझ गई, अब कुछ डर नहीं है।

राजा—(सक्रोध) कुछ आग बुझाना तुम्हारा काम नहीं है, तुमारा काम है उन दुष्टों को पकड़ना और उचित दण्ड दिलाना जिससे ऐसा उत्पातही सुनने में न आवे।

(कुण्डलिया)

जिस राजा के राज्य में दुष्ट न पावैं दण्ड ।
प्रजासहित राजा तहाँ भोगत दुःख प्रचण्ड ॥
भोगत दुःख प्रचण्ड, प्राण को डर निसिवासर ।
छत्रभंग नहिँ देर, दुष्ट घातैं निज औसर ॥
पुररक्षक चहुं पास रहैं नित साज सजा के ।
तहँ उपाधि बहु होय प्रबन्ध न जिस राजा के ॥

देखा नहीं महारानी साहिबा जल गई थीं ! मेरे पुण्य का प्रभाव रहा कि बचीं ।

मन्त्री—यथार्थ है, बड़ा भारी घात टला है। भविष्यत् में मनोयोग से अपने कर्तव्य कर्म का पालन करना चाहिए। भरोसा है कि अब ऐसी दुर्घटना का समाचार सरकार के कानों तक न पहुंचेगा।

राजा—देखो, फिर कभी ऐसा उत्पात नगर, राज्य में, या राजमन्दिर में, कहीं सुनने में न आवे, नहीं तो, तुम इस काम के उपयुक्त न समझे जाओगे।

कोत॰—(हाथ जोड़कर) महाराज मैं अभी प्रबन्ध करता हूं, दुष्टों का शीघ्र दमन करता हूं (जाया चाहता है)

(नेपथ्य में)

हे राजन् ! तेरे राज्य के भीतर चम्पक वन में हिंसक-

पशु गौओं को भड़काते, डराते तथा दुःख देते हैं। तू क्षत्री धर्मात्मा तथा गोब्राह्मणप्रतिपालक नरपति है, गौओं की रक्षा क्यों नहीं करता, उन हिंस्र पशुओं का क्यों वध नहीं करता !

राजा—(सुनकर सोद्वेग) हाँ, मेरे राज्य में गो माता को दुःख है ! धिक्कार मेरा राज्य, धिक्कार मेरा शासन, धिक्कार मेरा जीवन, (कोतवाल तथा मंत्री से) उपद्रवों का यही कारण है, कल प्रातःकाल उसी ओर आखेट की तय्यारी करो। हाय ! मेरे शुभ राज्य में अब ऐसा घोर उत्पात, कल व्याघ्र सिंहों का निर्मूल न किया तो मैं क्या क्षत्रिय, क्या राजा और क्या मेरा पराक्रम ! चलो तैय्यारी करो। राजकाज बन्द (इतना कह कर शीघ्रता से जाया चाहता और परदा गिरता है।

इति द्वितीय गर्भाङ्क। इति द्वितीय अङ्क॥

अथ तृतीय अङ्क।

स्थान—कपटी मुनि का आश्रम।

राजा चन्द्रसेन का शोक—

करोगे कृपा या नहीं दीनबन्धू,
निराधार हूं मैं अहो दीनबन्धू !

गया राज वैभो हुआ हूं भिखारी,
करूँ क्या जतन मैं कहो दीनबन्धू !
हुआ अन्त श्री का, कहाँ पुत्र दारा,
कहीं अब ठिकाना करो दीनबन्धू !
बहा जात हूं मैं जगन्नीरधी में,
गहो हाथ मेरा ज़रा दीनबन्धू !
नहीं संग साथी छिपा हूं अकेला,
हुआ जग अँधेरा मुझे दीनबन्धू !
मिटा नाम सुख का जरै नित्त छाती,
तुम्हारी शरण हूं बँचो दीनबन्धू !
रहा एक प्यारा मेरा कालकेतू,
न आया अभी तक सोऊ दीनबन्धू !
सुहावै नहीं कुछ मुझे चिन्तना से,
क्षुधा नींद जानूं नहीं दीनबन्धू !
शरीरी दिनोंदिन चला होय व्याकुल,
उघारो पलक को अहो दीनबन्धू !
प्रभू एक तूही कहूं जाय किससे,
उबारो उबारो मुझे दीनबन्धू !

हे जगदीश्वर। दास की कब खबर लोगे ?

(कालकेतु का दौड़ता हुआ प्रवेश)

काल० - मित्र चन्द्रसेन ! आप क्यों इतने कातर होते हैं? आप की करुणा भरी सुर को सुन कर मेरा वज्र सा कलेजा पानी हो गया है, जब ऐसा है तो उस भक्त-भयहरन करुणाकातर परमेश्वर का क्यों न हो ! मानों उसी ईश्वर ने आप की दुख दूर करने को मुझे शीघ्र लौटाया है। अब कुछ चिन्ता न करें, धीरज धरें देखिये, हमारा काम अभी सिद्ध होता है।

राजा चं०—(बड़े हर्ष से) अहा हा ! निस्सन्देह उस ईश्वर ने विनती सुनी और अपना नाम सार्थक कराया कि तुम आ गये, और नहीं तो इस व्याकुल चित्त को तो शान्त करेंगे। कहो, क्या उपाय कर आये ?

काल०—मानिये, सब ठीक हो गया।

चन्द्र०—किस प्रकार, मैं भी सुनूं !

कालकेतु—सुनिये—

प्रथम जाइ रनिवास को दियो आग से फूंक।
पाछे वन में व्याघ्र बन गरज्यो करि करि हूंक॥
धेनु भीर भय पाय के भागीं वन चहुं ओर।
गिरीं मरीं कितनेक पुनि गईं प्राण लै ठोर॥
गोघातक उस व्याघ्र के वधनहेतु परभात।
आता है इस विपिन को पुनः करौं उतपात॥

मैं वराह को रूप धर लाता हूं भुलवाय ।
आप सजग हो जाइये चिन्ता ग्लानि गँवाय ॥

बस, जब वह भानुप्रताप आप के पास आवे, निश्चय आवेगा, यह आप अवश्य जानें, तो आप उसे ऐसी पट्टी पढ़ाना जिससे चार रोज़ का काम एकही दिन में सिद्ध हो जाय। यह काम आप के ऊपर है। मैं जाता हूं, रात का तीसरा प्रहर हो गया न। (जाने को घबड़ाता है)

राजा चंद्रसेन—धन्य कालकेतु ! धन्य तेरी बुद्धि, धन्य तेरा साहस ! जाओ, जाओ, मेरी ओर से निश्चिन्त रहो, परन्तु........

कालकेतु—क्या कहते हैं, कहिये, कहिये।

चन्द्र०—कुछ नहीं. जाओ, परन्तु उसे चक्कर में डाल खूब थका और अपने को बचाकर सन्ध्या तक यहाँ लाना, जिससे वह घर लौट जाने का साहस न करे।

काल०—बेशक, ऐसाही करूँगा, आप कुछ भी चिन्ता न करें, देखिये तो क्या मजा चखाता हूं (दो चार पग आगे बढ़ फिर लौट कर) महाराज ! एक बात आप से कहने को भूला जाता हूं, वह यह है कि आपकी रानी तथा राजकुमार, आप के श्वसुर राजा चन्द्रवीर के यहाँ कुशल क्षेम से हैं। यह पक्की खबर है । उनके

लिये भी आप तिलमात्र चिन्ता न करें (चलता हुआ) अभी विदा होता हूं, समय समीप आ गया (जाता है)

इति प्रथम गर्भाङ्क ।

राजा—जिस गोघातक व्याघ्र के लिये मैं आखेट में आया वह न जाने कहाँ छिप रहा है, खोजूं तो कहाँ खोजूं। (सैनिकों से) अच्छा, चलो आगे बढ़ो !

(सब आगे बढ़ते हैं राजा घोड़े पर सवार पीछे इधर उधर देखता आता है)

पहिला सैनिक—(अचानक खड़ा हो सभय) दोहा।

अरे बापरे कौन यह है विकराल अनूप ।
नील भूधराकार सम देखि न जाय स्वरूप ॥

(पीछे हटता है)

दूसरा (खूब देख कर डर से) कवित्त—

देव दुरभाग्य है कि दिग्गज काहू को यह दानवदलेश है कि दन्ती बदराहो है । भूत है कि भैव पिशाच महा जादूवीर मायावली कैधों कोऊ छलिया गुनाहो है ॥ दुखद कलेश है कि सन्निपात रोग है ये भीषम भयङ्कर को रूप जगमाहीं है। ग्रह है कि गाज है कि जीवित गि-

रिन्द्र कोउ प्रानहर काल है कि काल को सिपाही है ॥

महाराज, मैंने कभी ऐसा जन्तु नहीं देखा, हाय, अरे बाप रे, (रोता है और डर से काँपता है)

तीसरा—सत्य है ! इसका उज्ज्वल चमकीला एक ही दाँत बाहर निकला हुआ है जिससे मानों यह बतला रहा है कि पृथिवीतल पर यह अकेला पराक्रमी शूरघातक जीवधारी है । महाराज ! जान बूझकर कौन जान देवे ।

राजा—क्या है ? कहाँ है ? बताओ, वृथा क्यों डरते हो !

(सैनिक उँगली से निर्देश कर दिखाते हैं)

राजा—(खूब देख और पहिचान कर मनमें) यह तो वाराह है, सचमुच बड़ा भयंकर है और घोड़े की गन्धपा कान उठाये इधर घूर रहा है (प्रगट) सैनिको ! डरो-मत यह जंगली सूअर है। इसी को देख कर मेरा घोड़ा आगे नहीं बढ़ता था (घोड़े को एड़ियाता है)

सैनिकगण—(हाथ जोड़ कर) महाराज ! इसे न छेड़िये, नहीं तो बड़ा अनर्थ करेगा ।

राजा—(क्रोध से) अरे ! तुमलोगों को ऐसा कहते लाज नहीं लगती, यह तो वराह ही है, व्याघ्र वा सिंह होता तो न जानें तुमलोगों की क्या दशा होती !

(सैनिकगण चुप हो जाते हैं)

राजा—देखो, मैं इसे अभी मारे डालता हूं। (तीर छोड़ता है) अरे यह तो भगा! (सैनिकों से) अच्छा, तुम लोग यहीं रहो, मैं इसे अभी मारे डालता हूं, मेरे सामने यह क्या चतुराई करेगा (तीर छोड़ता है) वह देखो गिरा (तीर छोड़ता है) लगी (वाराह भागता है राजा पिछियाता और तीर छोड़ता जाता है)

(वाराह का घूम आकर छिप जाना, सैनिकों का भीतर चले जाना)

राजा—(वाराह के पीछे बड़ी तेजी से) इधर ही आया, न जानें कहाँ छिप गया (इधर उधर देखता हुआ) पता नहीं लगता (पीछे देख कर) ओहो, बड़ी दूर निकल पड़े! सैनिकगण कहाँ हैं कुछ भी अनुमान होता नहीं। भला, जिसके पीछे पड़े वह भी हाथ आता सो भी नहीं यदि ऐसा ही लौट गया तो निन्दा होती है और यह ऐसा चतुर छली मिला कि कौवे का बाप! यदि हमने आज तक कभी किसी को जमीन का पकड़नेवाला, शरीर का चुरानेवाला तथा दाँव का बचानेवाला देखा तो बस इसी को! देखो न, अभी का अभी ओला सा बिला गया! खैर, कुछ चिन्ता नहीं, (इधर उधर खोज कर)

(मा०)—यमपुर तुर्त भेजूं देख पाऊँ जरा सा।
खल! छलबल करके भाग आया यहाँ तक॥

(ज़ोर से ललकार कर) नहीं अब तव रक्षा, (बाराह भागता है) भाग जैहै कहाँ को ? (घोड़ा और तीर फेंकता फेंकता हुआ) टुक समुझत नाहीं काल पीछे पड़ा है! (जल्दी से निकल जाना) परदा गिरता है।

इति द्वितीय गर्भाङ्क।

अथ तृतीय गर्भाङ्क।

राजा पुनः दिखाई पड़ता है।

राजा—(पछताता हुआ) हाय! (हाथ झाड़ कर) आखिर इसने मुझे धोखा ही दिया, भला, अब इसे गुफा से कैसे निकालूं! बस अब प्रयास उठाना वृथा है, चलूं लौटूं। (लम्बी साँस लेकर) अब तो थकावट और प्यास दोनों लगने लगीं। सच है, जब तक तन मन से किसी काम में लगे रहो सारा दिन का दिन क्यों न बीत जाय भूख प्यास कुछ लगती ही नहीं और जब काम से मन फिरा तब क्या पूछते हैं, भूख प्यास ही तो है! पल में जी को व्याकुल कर देती है। हाय! अब पानी के विना आगे बढ़ा नहीं जाता! शरीर भी कैसा निकम्मा पदार्थ है!

(कबित्त)

अन्न न करो तो हा! अजीरन से बाढ़ै पेट

रोग उपजै अनेक सुखो भी भरी रहै। मिहनत् करौ तो पाँव मस्तक पिरावै और टेंव जो करो तो ऐसो कौन ह्यां अमीर है ॥ दुर्दशा अनन्त मोसों कहाँ लों बखानी जाय चुल्लू भर पानी को लो आतमा अधीर है। कागज को खम्भा हाय फूंक दियो लम्भा तापै आठो याम दम्भा या निकम्मा सो शरीर है ॥

जो हो, भूख प्यास कुछ पत्थर ढेले के समान थोड़े ही फेंकी जा सकती हैं, हाय। कहते हैं जीव नहीं निकलता, इसलिये चलूं ढूंढूं पानी, जिससे जीव बचे! (इधर उधर (ढूंढ़ता है) हाय, यह घोड़ा भी भूख प्यास से व्याकुल हो चला! (साँझ के समय खग मृग का कोलाहल सुन कर, सशंक) अरे, यह काहे का घोर कोलाहल है!

(मा०) कलकल यह काहे का यहाँ होचला अब!
खग मृग रव करते क्यों लुकाते चले हैं!
चहुंदिशि अँधियारो क्यों सुझै दीखती है!
अहह विधि हुआ क्या जान पड़ता न कुछ भी!

कदाचित् भूख और प्यास से मेरा मन फिर गया और दृष्टि (मेरी) मन्द हो गई है! (कुछ विचार कर) अच्छा,

अब इस वृक्ष के ऊपर चढ़कर देखूं, अवश्य कहीं न कहीं जलचारी पक्षी उड़ते दिखाई देंगे (वृक्ष की जड़ से घोड़े को बाँध ऊपर चढ़ता है और चारोंओर दृष्टि फैलाता हुआ पश्चिम की ओर देखकर, आश्चर्यपूर्वक) अरे! अब तो साँझ हो गई, देखो जगल्लोचन भगवान् भास्कर क्षितिज वृत्त के निकट पहुंच चले। (स्मरण करके) हां, तभी है।

(बरवा)

नहिँ नहिँ अब कुछ शङ्का यह है साँझ।
इसी हेतु कोलाहल बन के माँझ॥
बोल रहे हैं खगगण ये चहुंओर ।
झगड़त हैं "रे खोंता मोर कि तोर"॥
कोई बैठा दुख से रहा पुकार ।
'कहाँ गई री माटी आ यह डार'॥
उड़ जाँय फड़क् कर कोई अंग समेट।
पूंछ हिला पुनि प्रिय से करते भेंट॥
करत परस्पर दम्पति प्रेम प्रकाश ।
पंख पसारे चहकत आते पास ॥
'भूख भूख' शावकगण रटते रोय ।
एहो तात! हमारा पेट न पूरा होय॥

मात पिता कुछ दे करते सन्तोष ।
'धीर धरो रे सुत हो गया प्रदोष' ॥
किसी किसी का शब्द सुनावे दूर ।
पंचम से भी तेज गर्व भरपूर ॥
कोई सन्ध्यावन्दन करते गाय ।
सरस मनोहर विनती प्रगट सुनाय ॥
करैं विदा का रवि को कोय प्रनाम ।
'कृपा कीजियो अहो सूर्य सुखधाम !'
'जब उदयाचल में आवेंगे आप ।
जीते रहे तो होगा पुनर् मिलाप ॥'
डाल डाल तरु तरु दल दल से सोर ।
मिल कर होता तुमुल एक अति घोर ॥
जैसे ऊपर है यह भरा बजार ।
वैसे ही नीचे भी शब्द अपार ॥
तिस पर शाखा पै कूदैं लंगूर ।
जीव जन्तु भय पाय परावैं दूर ॥
हिंसक पशु अब गरज उठे तजि खोह ।
भक्ष्य ढूंढ़ने लगे विचरते जोह ॥

सुन कर इनका रोर कभी अति पास ।
निर्बल पशु गण सभय न लेते साँस ॥
मत्त नाग यह खुजलाता निज क्रोड़ ।
भगता है चिक्करत डगालो तोड़ ॥
जान पड़े हो गया अकेला आज ।
इससे गर्व गँवाय चला है भाज ॥
इसी भाँति जिस्का न जाति में मेल ।
जान बूझ वह लाता विपति सकेल ॥

(घूम कर और सूर्य की ओर देख कर) अब साँझ होने में कोई कसर नहीं है ! (जलांजलि देकर)

अरिल । मैं अब हे भगवान ! यहीं पर शाम का ।
उपस्थान करता हूं मन से आप का ॥
कण्ठ सूख अब गया तृषा की आग से ।
भूला पथ, क्या करूं, आज दुर्भाग से ! ॥

(हाय मारता हुआ पुनः चारों ओर देखता है और पासही कुछ जलचार पक्षी उड़ते देख) इस पाकर वृक्ष के पास तो जलाशय का अनुमान होता है। धूआं भी उठता दिखाई देता है, अवश्य कोई यती यहाँ है। चलूं वहीं, ईश्वर ही रक्षक है ! (दिशा आदि का निश्चय कर नीचे उ-

तरता है घोड़े पर सवार होकर उसी ओर चलता हुआ)
अरे, अब तो बड़ा अँधेरा हो गया । क्यों न हो एक तो
सघन वन दूसरे सायङ्काल । देखो—

हरिगीत ।

सोर कम होने लगा अब, सूर्य अस्तंगत हुए ।
वननिवासी घर विराजे, घरनिवासी रह गए ॥
खड़खड़ाहट शब्द सुन चलते हमी को डर लगै ।
प्रति क्षण भारी बनै वन, संग छूटा, हग ठगै ॥

खैर, ज्यों त्यों कर चले तो आये ! (घोड़े की गर्दन
ठोंक कर) यही घोड़ा हमारे दुःख का साथी है ! यदि
यह न होता तो हम इस भयङ्कर स्थल से न उबरते ! (आगे
एक तपस्वी को देख घोड़े से उतर एक हाथ में घोड़े का
रास ले चलता हुआ) यह तो कोई महात्मा हैं, साधु मुनि
लोग स्वभाव से दयालु होते हैं, अब कुछ चिन्ता नहीं !
(थोड़ी दूर और आगे बढ़ सविनय दण्डवत् करता है)

अहो साधुसर्वज्ञमुनीश्वर! नमन आपको करता हूं
दया कीजिये मुझ सेवक पर,तृषा क्षुधा से मरता हूं
परमदयालु ब्रह्मज्ञानी हो, परमारथ लवलीन ।
व्याकुल दीन मलीन मीन मम जीवन वारिविहीन

(खड़े होकर मनमें) अरे, यह तो महायोगी जान

पड़ता है, इन्द्रियां इसको सब वशीभूत होकर आठवीं अवस्था में स्थित हैं अच्छा ज़रा जोर से अपना निवेदन सुनाऊँ (फिर उसी को कह कर)

अहो नाथ ! हे योगिराज ! हे तपशाली ! हे जगजीता !
हे पुण्यश्लोक ! ऋषिवर्य ! उर्द्ध्वरेता ! उदारचेता ! वेत्ता !
अहो पूज्यवर ! सुनिये विनती, अहो प्रभू ! हे सन्त !
शरणागत हूं, रक्षा कीजै, व्याकुल मेरा अन्त ॥

हे महाराज ! यह सेवक आज दूसरे पहर से बड़ा प्यासा है, कृपा कर जल पान करा प्राणपखेरू को रख लीजिये ! आप की शरण है २

क०मु०—(चौंक कर और इधर उधर देख कर मन में) कौन है ! बड़े दुःख से पुकार रहा है, वही तो नहीं है ! (सामने राजा को देखकर) (प्रगट) तू है ! क्या प्यास लगी है ?

राजा—हां, महाराज ! बड़ा प्यासा हूं।

कपटी०—(राजा को पहिचान कर मनमें) वही तो है, अब बना । (प्रगट) आओ २ यह लो जल । (कुछ फल मूल और कमण्डल देता है) और यह रास्ता है थोड़ी ही दूर पर पोखरी है घोड़े को भी पानी पिला लो यह भी प्यासा जान पड़ता है ।

राजा—बहुत अच्छा स्वामी ! (मन में) बड़ा ही दयालु

साधु है। (पहिले घोड़े को पानी पिलाता है पीछे आप जलपान करता है)

कपटी०—अच्छा, अब शान्त होकर यहां बैठो और घोड़े को इस वृक्ष की जड़ से बाँध दो। और यह आसपास बहुत घास है उसके साम्हने डाल दो।

राजा—(वैसा ही करता है) महाराज!

कपटी०—(आप ही आप) अब तो थह रह गया, भला हमलोगों की पकड़ से छूट सकता है! (प्रगट) बच्चा तुम कौन हो और क्यों ऐसी अनुपम सुन्दर तरुणाई पाकर अकेले इस महारण्य में अपने को दुखाते फिरते हो?

राजा—महाराज! मैं कैकय देश के राजा भानुप्रताप का मन्त्री हूं। मृगया को आया था मार्ग भूल गया। यह मेरे पूर्वार्जित कर्मों का फल है जो स्वामी का दर्शन हुआ क्योंकि— (मालिनी)

विषयनिरत प्राणी का कहाँ भाग्य ऐसा।
हरिजन चरणों का दरस पावैं कभी भी॥
अनुभव यह पूरा आज मेरा हुआ है।
विन अति दुख पाये शान्ति पावे न कोई॥

(मन में) महात्माओं का दर्शन अमोघ होता है, जान पड़ता है कुछ अच्छा ही होनेवाला है।

क॰मु॰—तात ! तुम्हारा कहना ठीक है, पर खेद की बात है कि अब रात बढ़ती जाती है, देखो -(मालिनी)

जगतप्रकृतिशोभा कृष्णपट से छिपा कर ।
गरजत निशि आवे देखिये कालिका सी ॥
तिस पर वन भारी संग साथी न कोई ।
पद पद पर बिच्छू साँप काँटे बघेरे ॥
(पुनि) तव नगर यहाँ से (है) कोस दो सौ अठासी ।
फिर अमित जनों को हाय कोसों जनावे ॥
रहिय अब यहीं पर आज इससे सचिव हे ।
कल गमन करीजो प्रात आनन्दपूर्वक ॥

भा॰प्र॰—बहुत अच्छा, आज स्वामी की ही सेवा में रहूंगा।

(नेपथ्य में)

दोहा। "तुलसी जस भवितव्यता तैसी मिलै सहाय।
आपु न आवै ताहि पहँ ताहि तहां लै जाय ॥"

भा॰ प्र॰—(नेपथ्य की वाणी सुन कर) यथार्थ है (मनमें) निस्सन्देह मेरे सौभाग्य ही ने यहाँ मुझे ला पहुंचाया है (प्रगट) महाराज ! आप लोगों को धन्य है, संसार का सार आप ही लोगों के हाथ में है और चौदहों लोक में आप लोगों की बड़ाई है, क्यों न हो—

जो कोइ माया मोह त्यागि कै करै ईश की सेवा।
पार होय भवसागर सो नर तुरत एक ही खेवा ॥

परब्रह्म चिद्घन स्वरूप की उपासना कर आप ।
षडैश्वर्य्य से धन्य धन्य नित रहते हैं निष्पाप ॥ १ ॥
जिसका मनन न मन से होवै जो नहि दीखै नैनों से।
जो न सुनावे कानों से, जो प्रगट न होवे बैनों से॥
परस गन्ध से परे रहै जो, अजर अमर अविकार ।
उसके ज्ञाता प्रगट आपको नमस्कार बहु बार ॥ २ ॥

(सिर झुका कर)

मैं क्या करूं प्रशंसा स्वामी विषया विष का भोजी हूं ।
प्रभुतामद से भरा हुआ हूं, धन वैभव का खोजी हूं॥
स्वाभाविक उपकार निरत हैं साधु लोग संसार ।
हाथ जोड़ मैं विनती करता करी मेरा निस्तार॥

क०मु०—(मनही मन) अब आया पेच में। (प्रगट) कुछ चिन्ता न कर, तुझे किसी बात की कमी नहीं है तू बड़ा भाग्यवान् है।

राजा—नाथ! मैं दास, स्वामी को पिता समान जान यह पूछते ढिठाई करता हूं कि स्वामी का प्रातःस्मरणीय मंगलदायक नाम क्या है ?

क०मु०—(हँस कर) तात! तुम हमारा नाम भिखारी समझो "फक्कड़रामगिरधारी, जिसको लोटा न थारी"

भा०प्र०—धन्य है। जो मनुष्य ज्ञान के निधान होते हैं वे आपही के समान अभिमानरहित हो भेष बदले अपने

को छिपाये रखते हैं । आप सरीखे फक्कड़ देख शिव विरंचि को भी सन्देह होता है कि कहीं तपस्या के बल से हमारा उच्चासन न छीन लें। हे महामहिम! आप आपही हैं।

कपटीमुनि— (रोला)

सत्य कहौं मैं सुनो, अहो मन्त्री सुजानवर ।
यहाँ बहुत दिन हुए मुझे रहते इस थल पर ॥
मुझे न कोई मिला, न मैंने कहा किसी से ।
इतने दिन में आज हुई है भेंट तुम्हीं से ॥
क्योंकि लोकप्रतिष्टा है हमको पावक सी ।
पल में करती भस्म तपस्या को इन्धन सी ॥
इसीलिये मैं गुप्त सदा वन में रहता हूं ।
औरों से क्या काम, भजन प्रभु का करता हूं ॥
वही चराचर ईश जगत आधार खरा है ।
उसे छोड़ जग झंझट में क्या लाभ धरा है ?
हो परन्तु तुम विज्ञ विमल, सन्तों का प्यारा ।
देख रहा हूं न्यारा दृढ़ विश्वास तुम्हारा ॥
इस कारण हे तात! सत्य कहता हूं मैं अब ।
अधिकारी से गूढ़ वचन छिप सकै किसी ढब ॥

भा०प्र०—सत्य है महाराज ! आपको लोकरिझाने से क्या प्रयोजन, पर स्वामी कहिये छिपाइये न ।

क०मु०—सुनो मेरा नाम एकतनु है, तुमसे क्या छिपाऊं।

भा०प्र०—इसका क्या अर्थ है ?

क०मु०—इसका यह अर्थ है—

"आदि सृष्टि उपजी जबहिं तब उत्पति भइ मोर।
नाम एकतनु हेतु तिहि देह न धरेउँ बहोर ॥"

भा०प्र०—(आश्चर्य करता है)

क०मु०—यह सुन आश्चर्य नहीं करना, क्योंकि तपस्या से कोई काम कठिन नहीं है, देखो—(सवैया)

तप के बल से जगसृष्टि रचै चतुरानन जी कमलासन में। तप के बल से अहि धारन में, समरत्थ सदा हरि पालन में ॥ तप के बल से नृप राज करै तपसी तप से बसै कानन में । तप के बल से भव नाश करै पञ्चानन आनल फानन में ॥

भा०प्र०—यथार्थ है (कुछ डर कर) मैंने स्वामी को न पहिचाना और अपना नाम छिपाया सो अपराध मेरा क्षमा हो । महाराज ! मैंही राजा भानुप्रताप हूं।

क०मु०—(हँस कर) कुछ शंका न कर, मैं तेरे नाम छि-

पाने से कुछ बुरा नहीं मानता, वरन इस चतुराई पर अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूं क्योंकि—(दो०)

सम्पति गुण गृह-भेद रति औषधि मन्त्र महान।
अरु नृप को निज नाम ये गोपनीय नित जान॥

राजन्! मैं तुझे अच्छी तरह से जानता हूं। तू राजा सत्यकेतु का पुत्र है न?

भा०प्र०—हाँ महाराज! (सिर झुका कर) (फिर मनमें) यह तो त्रिकालदर्शी तथा ब्रह्माण्ड को हस्तामलक किये हैं, तभी इनका नाम एक तनु है, यथार्थ है।

क०मु०—राजन्! मैं गुरुदेवजी की कृपा से सब जानता हूं व्यर्थ बकने से क्या लाभ! परन्तु

(अरिल्ल वा प्लं०)

तेरी निश्छल प्रीति अचलता सरलता।
नीति भक्ति को देखि हृदय मम तरलता॥
यद्यपि कथन अयोग्य तथापि न मन भरै।
स्वयं स्वच्छ वात्सल्य प्रकृति निज उच्चरै॥

पुत्र! ऐसा समय फिर नहीं आने का, मैं इस घड़ी तुझ पर अतीव प्रसन्न हूं यदि तेरी कुछ इच्छा हो तो कह।

भा०प्र०—(मनमें परम हर्षित होकर) हे परमकारुणीक महामुनि! आप के शुभदर्शन से धर्म अर्थ काम और

मोक्ष, चारों पदार्थ मेरे करतलगत हो गये । यद्यपि और किसी भी बात की कामना न रही तथापि (सकुचाता है)

कपटीमुनि—कहो, शंका न करो ।

भा०प्र०—जब स्वामी मुझ दीन पर प्रसन्न ही हैं तो ऐसा वरदान दें जिस से—

जरा मरन दुखरहित तनु समर न जीतै कोय ।
एकछत्र रिपुहीन महि राज कलप सत होत ॥

क०मु०—("रिपुहीन महि" के सुनते ही जरे घाव पर नोन छिड़कने की सी व्यथा पाकर मन में) देखो अब भी "रिपुहीन महि" चाहता है, ऐसा कामी, असूयारत स्वार्थी भोगलिप्सु दुष्ट जानता नहीं, कोई इस मर्त्यलोक में आकर अमर भी हुआ है, अब देखो हमलोगों से द्वेष तथा शत्रुता रखने का फल मिलता है । (आमर्ष से) तेरा वंश नाश न कराऊं तो मेरा नाम नहीं । (प्रगट) एवमस्तु, जा मेरा वचन है, सिवाय इसके सुनो—

(छप्पय)

किन्नर भूत पिशाच दैव दिगपाल निशाचर ।
नर नरेश मुनि सिद्ध महापण्डित गुन आगर ॥
पृथ्वी जल नभ तत्व आदि सब हाथ विराजैं ।
ब्रह्मा विष्णु महेश निरन्तर ढिग तव राजैं ॥

पर एक बात प्रण करि कहौं विप्रवंश बलवान है।
ते न लहैं दुख, नृपतिवर! तुझे सदा कल्यान है॥
तप प्रभाव सों विप्र जगत में अति बरियारे ।
जिनके क्रोध प्रचण्ड अग्नि से तेज, प्रजारे ॥
रूठैं ऐसे विप्र कभी कोई नर सुर में ।
हाय! नहीं कोई उसका रक्षक तिहुं पुर में ॥
अतः विप्रकुल छोड़कर अन्य हेतु नहिं तव मरण।
सत्यसत्य यह जानकर गहो विप्रकुल शुभ शरण॥

भा०प्र०—(हर्ष मान कर मन में) बस अब मेरे समान कौन है! (प्रगट) मैं आप के इस उपकार का क्या निहोरा मानूं। भरोसा है कि स्वामी की दयालुता के आगे अब कोई कसर बच न जायगी।

का०मु०—अब कोई कसर नहीं, परन्तु विप्रशाप बड़ा कठिन है इस से बँचना। एक विघ्न और है – यह जो हमारी भेंट और यह बातचीत, इसका भेद भी किसी से भूल करके भी न कहना।

भा०प्र०—सत्य है! स्वामी की आज्ञा का ध्यानपूर्वक पालन करूंगा, कदापि न भूलूंगा। पर (सविनीत) महाराज! कृपा कर अब यह कहें कि ब्राह्मण किस प्रकार वश होंगे।

कपटीमुनि— (प्लं०)

सुनो एक से एक यत्न हैं जगत में ।
फलदायक पर...विघ्नयुत हैं करत में ॥
है अति सहज उपाय भूप मेरे निकट ।
तिसपर भी इक कठिन बात है अतिविकट॥
जाता हूं मैं नहीं किसी के नगर घर ।
कठिन धर्म का डर, तू फिर सच्चा अनुचर॥
कौन यत्न, जो किया जाय हे नृपति ! अब ।
होता पल में तेरा मुझ से काम सब ॥

राजन् ! बड़ा असमंजस आन पड़ा, कैसा किया जावे (दूसरी ओर ध्यान ले जाता है)

भा०प्र०—महा मुनि, आप से मैं विशेष क्या निवेदन करूं पर हे महाभाग ! नीति कहता है—"बड़े सनेह लघुन पर करहीं । गिरि निज सिरन्ह सदा तृण धरहीं ॥ जलधि अगाध मौलि वह फेनू । सन्तत धरणि धरत सिर रेनू ॥" इसलिये (पाँव पड़ कर) हे कृपालु स्वामी मेरे लिये इतना कष्ट सहिये प्रभु !

क०मु०—(गुनगुनाकर) अच्छा, फिर क्या करूं । तेरे अनुपम गुणों ने तो मुझे ऐसा जकड़ रक्खा है कि जो तू कहता है वही मुझे करना पड़ता है ।

भा०प्र० – महाराज ! आप के सिवाय संसार में और मेरा कौन है ! अब किस विधि से क्या करना चाहिये सो बताइये ।

क०मु० – विधि कहौं, प्रबन्ध कहौं, बस यही कि मैं तो करूँ रसोई और ब्राह्मणों को परोसो तुम ।

भानुप्रताप—फिर,

कपटीमुनि— (कुण्डलिया)

अब प्रभाव उस अन्न का कहौं, सुनिय नृपराय !
जो २ द्विज भक्षण करैं तुरत होंय वश आय ॥
तुरत होंय वश आय और जो तिन कर खावैं ।
तेऽपि तुरत वश होंय सकल बल तेज नसावैं ॥
तब आज्ञा अनुसार करेंगे कार्य सदा सब ।
जाय करो सङ्कल्प बस सम्बत भर का भूप अब॥

भा०प्र०—(मनमें) अरे, यह अन्न क्या इसे तो वशीकरण मन्त्र ही समझना चाहिये (साश्चर्य मुनि को देखता है)

क०मु०—सौ सौ हजार विप्र सपरिवार जिमाना ।
प्रत्येक वार नूतन सब कोटि गिनाना ॥
मैं रोज तेरे खातिर जेवनार करूंगा ।
ऽनुष्ठान पूर्ण करके सब सोच हरूंगा ॥

इस प्रकार से राजन् ! सब ब्राह्मण तेरे वशीभूत हो जा-

वेंगे। ये जब यज्ञयागादि करेंगे तो आहुति पाकर स्वर्ग के देवता भी वश में आजावेंगे। अब कुछ संशय न करो, सोओ।

भा०प्र०—हां महाराज सोता हूं पर साथही चलेंगे न।

क०मु०—नहीं नहीं, यह हमारी तेरी भेंट किसी को मालूम न होनी चाहिए।

(योग)

सत्य वचन मैं कहूं सुनो तुम राजा । (अब) किसी भाँति से करना है यह काजा॥ मैं तव उपरोहित का रूप बना कर। आता हूं मैं ... कलही उसे छिपाकर ॥ अपने तप के बल से सब कर लूंगा। एक वर्ष लों उसे यहाँ रक्खूंगा॥ रात हुई निःशङ्क शयन अब कीजे। नर सों मुझ से भेंट महल में लीजे॥ वाजि सहित मैं सोते तुझे उठाऊँ । निज तप बल से रात नगर पहुंचाऊं॥ जब अकेल में बात कहूं सब तुझको। तब सत्य मान कर पहिचानोगे मुझको॥

भा०प्र०—(बड़ा उपकार मान कर)

आज हुआ कृतकृत्य मैं अहो महामुनिनाथ ।
अब सब चिन्ता आपकी तव पदरज मम माथ॥

(पांव पकड़ता है) महाराज, आज्ञा हो तो मैं सोऊं।

क०मु०—सोओ २ अब तो तुमने हमको फँसा ही लिया क्या करें।

भा०प्र०—(सोता है)

क०मु०—(स्वगत) लाया तो चक्कर में! बस, अब कालकेतु की देरी है।

कालकेतु—(चुपचाप एक ओर से निकलता है)

क०मु०—(कुछ आहट पाकर) आओ २ मन्त्र सिद्ध है। (स्वगत) मालूम होता है यह यहीं छिपे छिपे हमारी बातचीत सुनता था।

काल०—(हँसता हुआ) क्या बात है! आप तो मुझ से भी बढ़कर निकले।

क०मु०—(संकेत करके) चुप रहो, पर हमारा मतलब समझ में तो आ गया? भोजन में मांस .....

काल०—मैं सब समझ गया। अच्छा, मैं इसको ले जाता हूं (राजा खुर्राटे मार रहा है) (राजा और घोड़े को उठा पीठ पर लाद चलता है और कपटीमुनि भी कुछ दूर बतियाता जाता है)

(कालकेतु का राजा को रनिवास में सुलाना और घोड़े को वहीं बांध देना, फिर निद्रित पुरोहित को उठा वैसाही दौड़ता हुआ दीखना और एक गुफा में उसे चूटना—यह केवल नृत्य से दिखलाया जावेगा)

राजा—(सोते से उठ, इधर उधर देख आश्चर्य करके) क्या मैं अपने राजमन्दिर में पहुंच गया! पास ही रानी को देख, अरे मैं वास्तव में घर में हूं! धन्य है, तभी महा-

त्माओं का सर्वत्र आदर होता है ! धन्य है उसकी अ-प्रतिहत दैवी शक्ति, धन्य उसकी सत्यप्रतिज्ञता। भला ऐसे पुरुष का वचन खाली हो ! वह अवश्य मेरा मनोरथ पूरा करेगा (कुछ सोच कर) अभी यहां ठहरना ठीक न होगा। मेरे इस अचानक आगमन से रानी अचरज मानेंगी और जो बात कहने को मना है उसका कुछ भी अंश प्रगट होने से काम बिगड़ेगा। कोई अभी जगह नहीं है इसलिये चलूं जंगल की ओर से होकर आऊँ (चुपचाप उठता और घोड़े को खोल उस पर सवार हो निकलता है) (परदा गिरता है)

॥ इति तृतीय गर्भाङ्क ॥ इति तृतीय अङ्क ॥

अथ चतुर्थ अंक।

स्थान—मन्त्री धर्मरुचि का भवन।

मन्त्री—(उदास चित्त से, मनहीं मन) महाराज कहां भूल पड़े अबतक जाना नहीं गया। सैनिकगण जो साथ में थे उनका भी पता नहीं है। दो तीन जनें लौटे हैं वे तो बड़ी भयंकर बातें करते हैं। कहते हैं कि राजा दोपहर को एक वाराह के पीछे दौड़े और इधर ये लोग प्रचण्ड आँधी पानी के साथ पत्थर पड़ने से तीन तेरह हो गये। जिसने जिधर पाया उधरही का रास्ता लिया, यह क्या उपद्रव है !

(राग सोरठ)

राखो प्रभु नृप को तुम मेरे, शरणागत हैं हम सब तेरे ॥ टेक ॥ भूल पड़े हैं बन में कल से जहां व्याघ्र वृक सिंह घनेरे। शिला वृष्टि अति पवन भयङ्कर रहे कहां मम नाथ अँधेरे ॥१॥ सैनिक जो जिय राखि पराये समाचार सब क-हत पधेरे । अति अचरज की बात सुनावें धर्म कर्म को पाप खदेरे ॥२॥ धर्मशील नृप सरिस कहां अब मिलैं भु-आल जगत में हेरे। हाय २ पुरजन अनाथ को यम के दूत छिनहि छिन घेरे ॥३॥ अबलौं सत्य खबर नहिं आई गई रात इत होत सबेरे। मणि बिनु फणि की गति हमरी है शोकसिन्धु उमड्यो चहुं फेरे ॥४॥ किस २ को समझाऊं मैं अब व्याकुल राज समाज सचेरे। डूबत राज काहु हा! कैसे हैं अधीर दुर्गति के प्रेरे ॥ ५ ॥

(कुछ देर सिर नीचा कर) हरदेव! देख तो कोई और सैनिक लौटे क्या!

हरदेव—महाराज! सुनते हैं आए हैं, परन्तु बड़ी दुर्दशा हो गई है। मैं कुछ सामान लेने बाज़ार गया था, वहां केवल यही चरचा है। लोग कहते हैं कि महाराज भी लौट आए।

मन्त्री—(सातुर) क्या महाराज भी आ गये?

हरदेव—हाँ महाराज भी कुशलपूर्वक अभी आये हैं।

मन्त्री—तब तो बड़ी बात हुई, चलो भेंट कर आवें (राजकीय परिधान पहिन कर एक ओर जाता है)

॥ इति प्रथम गर्भाङ्क ॥

(स्थान—राजभवन, राजा तथा सैनिकगण यथास्थान बैठे हुए)

राजा—(एक से) कल की रात तुमलोगों को कैसी बीती? हम तो उस वाराह के पीछे पड़े पर वह ऐन वक्त पर एक कन्दरा में समा गया, बाद हमें प्यास लग आई। लौटते थे, मार्ग भूल गये।

१ ला सैनिक—महाराज क्या कहें, हमलोग तो मरते २ बँचे हैं।

राजा—(विस्मित होकर) कैसे?

१ ला सैनिक—हमलोग श्रीमान् का रास्ता देखते उसी जगह देवदारु के नीचे बैठे हुए थे। इतने में ऐसा भयङ्कर तूफान और पानी आया और ओले गिरे कि चेत किसी का न रहा। वृक्ष का टूटना, पत्थर का लगना। हाय! बड़ी कठिनाई से अपनी २ जान बचा भागे। श्रीमान् ही के नाम का प्रभाव है जो आज हमलोग श्रीमान् के चरणों का दर्शन कर रहे हैं।

राजा—(आश्चर्य से) अरे ऐसा! हमने तो तूफान ऊफान कुछ नहीं दीखा।

२ रा सैनिक—महाराज दूर निकल गये होंगे। सिवाय

इसके, श्रीमान् के समान हम गरीबों का भाग्य थोड़ा ही हो सकता है। काँच काँच है और मणि मणि।

(दो एक सैनिक लँगड़ाते हुए आते और अपना २ हाल इसी प्रकार कह सुनाते हैं)

राजा—अहह ! तुमलोगों का नया जन्म हुआ है ! ईश्वर करे, अब ऐसा कदापि न हो।

सैनिक—महाराज ! धन्य आप का प्रजावात्सल्य ! स्वामी ! आप के रहते हमलोगों को कुछ नहीं होता। एक बार काल भी आप के डर से डरता है।

राजा—(मनमें) देखो मुनि का वचन अब अपना प्रभाव प्रगट करने लगा।

द्वारपाल का प्रवेश।

द्वारपाल—महाराज ! मन्त्री जी आते हैं।

राजा—(सहर्ष) अच्छा है, आने दो।

(द्वारपाल का बाहर जाना और मन्त्री का आना)

मंत्री—(उचित शिष्टाचार करके) कल महाराज के न लौटने से सेवक को बड़ी भारी चिन्ता थी और ये सैनिक लोग बड़ी भयङ्कर खबर बतलाते थे जिसे सुन २ हृदय काँपता था।

भा०प०—धर्मरुचि जी ! ईश्वर जब बचानेवाला होता है तो बड़ी २ आपदों से भी रख लेता है। देखिये न जं-

गल एक हो, परन्तु इनको और प्रचण्ड आँधी पानी ओले, और जहां हम रहे उधर कुछ भी नहीं।

धर्म०—यथार्थ है नाथ! पर बड़ा भारी विघ्न दूर हुआ है (कुछ सोच कर) यदि———इसके लिये कोई प्रायश्चित्त कर दिया जावे तो............

भा०प्र०—हां, हां, हमारी भी यही इच्छा है। (कुछ ठहर कर) इस निरापद के उपलक्ष में एक वर्ष तक एक एक लक्ष ब्राह्मण रोज भोजन कराये जायँ। परसों शुभ दिन है। यदि हमारी इस मनोवांछा पर तुम्हारी राय हो तो (इसका) प्रबन्ध शीघ्र किया जावे।

धर्म०—श्रीमान् ने अति उत्तम विचार किया है। प्रबन्ध शीघ्र किया जावेगा।

भा०प्र०—अच्छा तो, करो प्रबन्ध। इसमें यह भी बात है कि यह प्रजाओं के सुख के लिये है राजपुरोहित जी रसोई करेंगे और मैं स्वयं सब को परोसूंगा। इसलिये ऐसा प्रबन्ध होना चाहिए जिससे किसी को कुछ कष्ट न हो और काम जेवनार का ठीक समय में हुआ करे।

धर्म०—(मनमें) धन्य श्रीमान् की उदारता तथा धर्मभीरुता! (प्रगट) बहुत अच्छा महाराज! मैं अब इसका बहुत शीघ्र प्रबन्ध करता हूं (जाता है) (सभा उठती है)

इति द्वितीय गर्भाङ्क।

स्थान—सड़क।

ब्राह्मणगणों का लड़के बच्चे सहित गाते हुए दिखाई देना।

प्रथम दल—चले जाते हैं निमन्त्रण में हम राजा के यहां।

है महा पर्व कोई आज से राजा के यहां॥

काम अच्छा है पुरोहित ने जो उपदेश दिया।

वर्ष भर लक्ष विप्र जीमिहैं राजा के यहां॥

धन्य है वह राजा जो गो द्विज पै छोह करै।

ऐसा ही होता रहे सर्वदा राजा के यहां॥

न्यायी औ धर्मशील राजा इस देश का है।

देवेंगे रोज अब आसीस हम राजा के यहां॥

ऐसा जब होवे सदा तो वृथा भटकें क्यों हम।

होके निश्चिन्त करें धर्म निज राजा के यहां॥

२ रा दल—आज राजमन्दिर में होगी रसोई।

एक वर्ष तक है इसी भाँति रसोई॥

छोड़ छोड़ घर को हम आए हैं यहां।

वास करेंगे यहीं पा पा के रसोई॥

भूपती ने हमको सकुटुम्ब बरा है।

पेट पूर्ण होगा यह खा खा के रसोई॥

भाँति २ की अनेक चीज़ बनेंगी।

धन्य है भुआल जो दीन्हीं है रसोई॥

(निकल जाते हैं।)

एक जने पीछेवाला—(आंख मटकाता बगल बजाता गाता आता है)

पूरी खीर मलाई लेकर थोड़ा थोड़ा हलुआ ।
लड्डू पेड़ा और खायँगे दही संग मालपुआ ॥
करकर पापड़ तरी तिलौरी और मुंगौरी दालबरी ।
विविध मसालेदार कचौरी कैथ करेला मटरफरी ॥
कटहर कैरा कोमल आलू कुम्हड़े की तरकारी ।
चरपर चटनी अचार के संग बढ़ै जायका भारी ॥
दूध सुहारी एक संग में फिर थोड़ा सा भात ।
दही बड़े तो रोज पाव भर उड़ैं गपागप आत ॥
ठोंक ठठा के खूब खायँगे और डकारेंगे ओ३म् ओ३म्
(भागता है)

२ रा दल—(खूब ठहर २ कर) करो ना अब देरी, अरे मेरे भाई करो ना अब देरी अरे० (टेक) हे रामलाल गोपाल अनन्दी, बलदूबाबा आओ जल्दी, नियराय आये नगरी ॥अरे०॥ छोटो बिटिया बड़की चाची र-मियां बहिनी सुनियां भांजो मानो री कही मेरी (अरे) देखो २ रे नगरिया यह महल की डगरिया कहत मैं टेरी [अरे मेरे०] (एक जने से)

पीछेवाला—चलो चलो अब जल्दी भाई, चढ़ो बेर अब पहर अढ़ाई, कहां रे बुढ़िया तेरी (अरे मेरे)
(इसी प्रकार ब्राह्मणों का जाना)

राजा एक सेवक के साथ आता है।

रा०भा०—(स्वगत) महात्मा अबतक न आये क्या कारण है?

सेवक—महाराज! पुरोहित जी आते हैं।

भानुप्रताप—कहां?

सेवक—(अंगुली से इशारा करके) वो, आते हैं।

राजा—(स्वगत) नाम लेते ही आ गये बड़े दयालु स्वामी हैं (प्रणाम करता है।)

पुरोहित का प्रवेश।

पुरोहित—(आशीर्वाद देकर) महाराज! "होंन कि ना-चाहिय नेपआ क्षेमु?"

भा०प्र०—धन्य है! "नूंचाहिप न कोपआ कत बअ लाभ मैं"। ब्राह्मणगण अब जमा होते ही हैं, रसोई का प्रबन्ध हो गया कि नहीं?

पुरो०—मन्त्री जी बड़े योग्य पुरुष हैं, उन्होंने सब प्रबन्ध कर रक्खा था, यहां तक कि रसोंई करने में मुझे कुछ भी परिश्रम न जान पड़ा।

भा०प्र०—क्या रसोंई तैय्यार हो गई?

पुरो०—हां, सब प्रस्तुत है, केवल पंगत का विलम्ब है।

भा०प्र०—(आश्चर्य मान कर, स्वगत) सचमुच इसकी योगिकशक्ति विलक्षण है। (प्रगट) अच्छा तो……

अरिमर्दन का प्रवेश ।

अरिमर्दन—पुरोहित जी, चलिये ब्राह्मणगण जमा हो गये अब देर करने से अनर्थ होगा ।

राजा—पुरोहित जी ! जाइये, अब थाल लगाइये (फिर अरिमर्दन से) जाओ, देवताओं को पंक्ति २ से प्रेमपूर्वक बिठलाओ ।

(पुरोहित और अरिमर्दन एक एक ओर जाते हैं)

राजा—(स्वगत) बस अब क्या देर है, यह सब पुरोहित जी ही की कृपा है ।

मन्त्री का प्रवेश ।

मंत्री—(जल्दी से आकर) महाराज ! चलिये, ब्राह्मण लोग सब बैठ गये, देर होती है सब दूर २ से आये हैं, भूखे हैं । आँय बाँय बक रहे हैं शीघ्र चल कर उनका आत्मा ठंडा कीजिये ।

राजा—हां चलो, (सब जाते हैं)

इति तृतीय गर्भाङ्क ॥

अरिमर्दन—बैठो, भाई ! बैठो । तुम यहां, तुम यहां, इत्यादि (मन्त्री आता है)

मंत्री—हे ब्राह्मणदेवताओ ! शान्तिपूर्वक बैठिये । अब श्रीमान् थाल लेकर आया ही चाहते हैं । (भीतर जाता है और राजा को साथ लेकर बाहर आता और फिर दोनों भीतर जाते हैं)

राजा—(थाल लाकर ब्राह्मणों के सन्मुख रखता है)

(नेपथ्य में)

"विप्रवृन्द उठि २ गृह जाहू। है बड़ि हानि अन्न जनि खाहू॥
 बनेउ रसोईं भूसुर मांसू।"

राजा—(भौंचक खड़ा हो आकाश को ओर देखता है)

ब्राह्मणलोग—(क्रोध से खड़े होकर) जा मूर्ख, राजा बना है, अधम पाखण्डी, जा कुटुम्ब समेत राक्षस हो। तूने देश भर के ब्राह्मणों को बुलाकर उनका धर्मनाश करना चाहा था, न! जा, सपरिवार राक्षस हो। एक साल के भीतर तेरे कुल में एक जने पानी देनेवाला तक भी न बचे। (इतना कहकर चलने लगते हैं)

(राजा का सर्वाङ्ग काँपता है।)

(पुनः नेपथ्य में)

हे विप्रगणो! तुम लोगों ने शाप सोच विचार कर न दिया। इसमें राजा का दोष नहीं है।

सब—सुन कर (आश्चर्य करते हैं)

राजा—(गहरी साँस लेकर) और सिर ठोंक कर—हाय!

गिरा अचानक यह सीस पै पवी,
अहो प्रभू! हे हरि! हाय क्या हुआ!
हुआ महापाप सुधर्म करते,
किस्से कहूं मैं निज भाग्य की दशा!

(थोड़ी देर हाथ बाँध सिर नीचा कर जल्दी से) "देखो तो पुरोहित पाकशाला में है कि नहीं" (इतना कह दौड़ता है सब दौड़ते हैं और वहां कुछ भी न पाकर)

राजा—यह सब मेरे भाग्य का दोष है, हे ब्राह्मणदेवताओ!

(सशोक)

कामना क्या थी हमारी, क्या नतीजा हो गया।
हे प्रभू अब क्या करूँ मैं, काल पूरा हो गया॥
जो किया मैंने, उसे पाया किसी का दोष क्या।
भाग फूटा था मेरा ही, आज जाहिर हो गया॥
साधु भी होते हैं खल, मैंने नहीं जाना रहा।
देख के आचार को विश्वास मेरा हो गया॥
वो कहाँ जंगलनिवासी, मैं कहाँ बन में रहा।
देखिये! दुर्भाग्य का क्या ही तमाशा हो गया!
क्यों विना सोचे गया मैं मन से पीछे कोल के!
भूल के रस्ता छली से क्यों कुदर्शन हो गया!
था महापापी, मुझे हर बात से वश में किया।
आपलोगों से हमारा नाश आखिर हो गया॥
है बड़ा टेढ़ा जगत्, जंजाल से भरपूर है।
बाप भी छूरी चलावे, हाल ऐसा हो गया॥

'लोभ के मारे मनुष होते हैं अन्धा' ठीक है ।
छोड़िये इस लोभ को, यह हाल मेरा हो गया॥

हे ब्राह्मणदेवताओ ! मैं आप लोगों को वारवार दण्ड-वत् करता हूं यदि कुछ वचाव है तो कृपा कीजिये ।

ब्राह्मणगण—

जानते हो आप भावी मिट नहीं सकती कभी ।
है नहीं कोई दवाई रोग भारी हो गया ॥
क्या करें, भूपाल ! यद्यपि दोष तेरा है नहीं ।
शाप तो तुझपर अचानक ही हमारा हो गया॥
काम आता है नहीं कोई किसी का वक्त पर ।
जो करे पावे वही, यह कर्म का फल हो गया ॥

राजा—

दीखता है ही नहीं अब ढंग वचने का मुझे ।
भानु मानो छिप गया, सब जग अँधेरा हो गया॥
तोड़ने को मैं चला था फूल हा ! आकाश का ।
गिर पड़ा हूं हाय ! चकनाचूर मेरा हो गया ॥

(मूर्छित हो जाता है)

ब्राह्मणगण—(राजा को उठाकर)

लोभ को त्यागो, न होओ भूप व्याकुल तुम वृथा।
तुम सयाने हो, सँभालो, जो हुआ सो हो गया॥

'अन्त में होगी भलाई' शाप का कारन सुनो ।
मत करो चिन्ता हमारा वाक्य फिर भी हो गया ॥

(राजा चैतन्य होता है)

राजा—महाराज ! जो विधाता सहावे उसे सहना ही पड़ता है । सहेंगे ! (सिर नीचा कर लेता है)

(परदा गिरता है) इति चतुर्थ गर्भाङ्क ।

इति चतुर्थ अङ्क ।

अथ पंचम अङ्क ।

कपटीमुनि का आश्रम ।

चन्द्रसेन—(गोमुखी में हाथ डाले हुए) "नमो भगवते वासुदेवाय" कहता हुआ । कालकेतु आने को था अब तक न आया ! क्या कारण है ! "नमो भग०" जो हो, मेरी दहिनी आंख और दहिनी भुजा फड़क रही है, इससे सूचित होता है कि काम अवश्य सिद्ध हुआ । "नमोभग०" और ऐसा जान पड़ता है कि कालकेतु यह शुभ समाचार आकर कहता ही है (आंख मूंद कर) "नमो भगवते" । यदि इस बार न भी हुआ तो क्या चिन्ता है । आखिर घरबार तो छोड़ही दिया है । "कार्य्यं वा साधयेयं शरीरं वा पातयेयम्" (कभी बगल

झांकता है और कभी आंख मूंद लेता है) अरे किसी के गाने की आवाज आती है ! (कान देता है)

नेपथ्य में—(गाना) "जग में सब कुछ है उद्योग। यही कसौटी है अदृश्य का करता सुखसंयोग" (जग में०)

चन्द्रसेन—वास्तव में संसार में उद्योग के समान कोई हितकारी नहीं इसकी सहायता के लिये आपस का मेल भी चाहिये। हमने इन दोनों से काम लिया है। देखें अब "सुखसंयोग" होता है कि नहीं ! (सुनता है)

नैपथ्य में—"यही रंक को नृपति बनावै, देवै सुखसम्भोग। यही मेरु को धूर करैहै, जलनिधि वारिवियोग" (जग)

चन्द्रसेन—यह तो कालकेतु का स्वर सा बोध होता है और ऐसा मालूम होता है कि वह गाता हुआ बड़ी तीव्रता से इधर ही आ रहा है। (ससंभ्रम खड़े होकर) बस, वही तो है और काम भी सिद्ध ही कर आ रहा है, नहीं तो आनन्दसूचक धुनि न होती ! (थोड़ा चलकर) वाह रे ! कालकेतु (बड़ाही हर्ष मानता है) आओ आओ !

काल०—(हँसता सिर हिलाता ताली बजाता गाता हुआ) "संभव करे असंभव को यह, कर परखें सब लोग"। प्रबल शत्रु को नाश करावै मिटै सदा को शोग (जग०)

चन्द्रसेन—क्या नाश हो गया ?

कालकेतु—जी हाँ, बचता है ?

चन्द्रसेन—(सहर्ष) ठीक तो कहो ?

काल०—महाराज ! मैं आप से झूठ कहूंगा। ब्राह्मणों ने शाप दे दिया। यही वक्त है चलिये अब छोड़िये इस नंगेपने को।

चन्द्र०—बस चलो, कुछ देरी नहीं है परन्तु कालकेतु! तुम पहिले जाओ और अरिशाक, वज्रबाहु, प्रचण्डासुर, शङ्खध्वज, सूर्यसेन आदि भाइयों को शीघ्र खबर दो जिस से अपनी सेना साज २ एक दम चले आवें।

काल०—महाराज ! मैंने सब को खबर दे दी है इसी से न देर हुई। सब लोग आपही की बाट जोह रहे हैं। अस्त्र शस्त्र चतुरंगिनी सेना सब दुरुस्त है। बस चलिये।

चन्द्र०—तब, क्या कहना, चलो शत्रु को विजय करें।

काल०—चलिये, और क्या, खाली हाथ हिलाते मुंह छिपाते घर लौटे तो क्या लौटे।

चन्द्र०—बेशक (झपट अपनी गुदड़ी माला इत्यादि फेंक छिपाई हुई जिरहबख्तर पहिन और ढाल तलवार धनुष बान ले वीररूप से बन ठन के) चलो दुष्ट को अभी मारें। जय दुर्गे ! जय जय ! (दोनों सदर्प दौड़ते हैं)

इति प्रथम गर्भाङ्क।

(राजा भानुप्रताप का दर्बार, राजा मंत्री तथा सभासदगण)

राजा भानुप्रताप—(लंबी साँस लेकर) (ह०गी०)

अवलोकिये, तो क्या हमारी हो गई है अब दशा !
जनु अजा केसरि को पकड़ निःशङ्क लाती है नशा ॥
सभी सम्पति उड़ चलीं सन्मुख बजाते चुटकियां ।
जैसे बमीठे से निकलतीं पंखधारी चिउटियां ॥
मन नहीं लगता हमारा अब किसी भी काम में ।
लागै न दिन को भूख, नींद न रात आठो याम में ॥
विजली सरिस चिन्ता कलेवर-बैटरी में नित रहै ।
शापभय के समाचार सुनाय बल आयुष दहै ॥

मंत्री—महाराज ! चिन्ता न करें, चिन्ता चिता से बढ़ कर दुःखदायिनी होती है ।

राजा भा०—मंत्री ! हो न हो, हम पर कोई कमर कस रहा है ।

मंत्री—ठीक है, मुझे भी खबर मिली है, वही कालकेतु और चन्द्रसेन दोनों अब सब हमारे शत्रुओं को उभाड़ हम पर धावा करने की तैय्यारी कर रहे हैं । महाराज ! मालूम होता है कि आप इन्हीं दुष्टों के ही कूट से हुआ है ।

भा०प्र०—बस यही बात है, मृत्यु निश्चय निकट आन पहुंची (शोकातुर होकर) बोलो क्या उपाय है ?

मंत्री—मृत्यु से तो कुछ उपाय नहीं है, परन्तु इसके लिये शूर प्रतापी क्षत्रियकुलसम्भूत को तिल मात्र डर नहीं क्योंकि धर्म के आगे मृत्यु कोई वस्तु नहीं है।

भानुप्रताप—किस प्रकार ?

मंत्री—महाराज ! इस संसार में केवल धर्म से ही डरना चाहिए, कायर मूर्ख लोग मृत्यु से डरते हैं और चाहते हैं कि हम कभी न मरें। भला ऐसा कभी हुआ है कि इस मर्त्यमण्डल में आकर कोई न मरे। हमारा धर्म है कि संग्राम के बीच खड़े हो शत्रु का नाश करें वा करावें। क्या आपको यह भी स्मरण न रहा "हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्" ? तब मृत्यु क्या चीज है !

भा०प्र०—धर्मरुचे ! सुनते हैं अश्वशाला के कई घोड़े और हाथी भी कई मर गये।

मंत्री—महाराज ! मर गये तो क्या संसार से हाथी घोड़े उच्छिन्न हो जावेंगे। आप इतने हताश क्यों होते हैं। हाथी घोड़े कोई—मरे नहीं हैं, सब जीवित हैं. अस्त्र शस्त्र सब प्रकार का बल सुरक्षित है। यह सब व्यर्थ मन की कचियाहट छोड़िये, लोग सुनेंगे तो आप को क्या कहेंगे ?

भा०प्र०—नहीं, नहीं, मैं हताश नहीं होता वरन् अपने दिनों के फेर को कहता हूं।

मंत्री—महाराज ! चक्की के फेरों का क्या हिसाब ! इसका नाम ही कालचक्र—सदा बदलनेहारा है, जो कल था सो आज नहीं और जो आज है वह कल न रहेगा यह पचरंगी पुतला भी वैसा ही आज है कल न रहेगा । ऐसी अनित्य देह से जिसने धर्म का पालन किया उसी का जन्म सफल है । हमारे हाथ धर्म है सो साहस कर चलिये धर्म का पालन करें ।

(घबराये हुए सेनापति का प्रवेश)

सेनापति—महाराज ! पराजित शत्रुओं ने फिर से सिर उठाया है । वही चन्द्रसेन, कालकेतु, अरिशाल, प्रचण्डासुर आदिक बड़ी भारी सेना साज कर हमारे नगर के बिलकुल समीप आ गये हैं । क्या आज्ञा होती है ?

राजा भा०—(स्वगत) जो डरते थे वही हुआ । खैर, क्या चिन्ता (प्रगट) क्या हुआ तुम भी शीघ्र दल साज संग्राम को खड़े हो जाओ । जाओ, जल्द सेना दुर्ग से बाहर ले चलो, देर न करो ।

सभासदगण—महाराज ! अब उन लोगों का काल आया नहीं तो जान बूझ कर क्यों मरने आते । इस समय तो सिरही छेदन करेंगे ।

भा०प्र०—भाइयो ! तुम्हीं लोगों का भरोसा है दुष्टों का वध कर मुझे शीघ्र चिन्ता भय से बचाओ ।

सभासदगण—हां महाराज ! इस शरीर को आप ने ऐसेही कामों के लिये पाला है जैसी आज्ञा दें तुरन्त पालन करेंगे।

राजा भा०—जाओ अस्त्र शस्त्र से प्रस्तुत शीघ्र होओ, शत्रुगण की सेना निकट आ गई।

(सभासदगण का प्रस्थान)

भा०प्र०—मन्त्रीजी ! शीघ्र प्रबन्ध करो (अरिमर्दन को बुलाकर) अरिमर्दन ! पुराने शत्रुओं की सेना फिर से लड़ने को आती है इसलिये जाओ सेना का योग्य प्रबन्ध करो और आप भी प्रस्तुत हो जाओ। मेरा कवच, खड्ग धनुर्बाण शीघ्र लाओ । देखें ये दुष्ट कहां तक साहस करके आये हैं तुम्हारे लाने में विलम्ब होगा चलो मैंही शस्त्रागार को चलता हूं। (सब जाते हैं)

इति द्वितीय गर्भाङ्क ।

स्थान—कैकयनगर के निकट—

चन्द्रसेन—हे वीरगणो ! राजा लोगो, भाइयो, अब यही समय हमारे विजय का है। यही समय अपनी वीरता, साहस, बुद्धि पराक्रम बतलाने का है । भानुप्रताप को ब्राह्मणों ने शाप दे दिया है जिससे उसका चित्त ठिकाने नहीं है। अब यह हमीं लोगों के हाथ से मरेगा, पर यह उसका अन्तिम समय है, यह स-

मझ कर असावधान न होना वरन् पूर्ण दक्षता से शस्त्र चालन करना चाहिए। इसने हमलोगों को बड़ा सताया है। स्मरण है कि नहीं, राजपाट सब छीन लिया है, लड़के बच्चों से अलग कराया है, वन में सुलाया, धोबीघाट का पानी पिलाया है। अधिक क्या कहें, जितना दुःख जितना क्लेश हमलोगों ने भोगा है हमी जानते हैं। अब चलो चारों ओर से घेर शत्रुओं का संहार कर उनके रुधिर से अपनी तलवार की प्यास बुझावें और हमारे साथ शत्रुता करने का फल चखावें चलो यही समय है चलो चलो आगे बढ़ो। (बढ़ता है असि लेकर।)

सब कोई- चलो दुष्ट को मारें अभी मारें अभी! (बड़े दर्प के साथ सब अस्त्रशस्त्र ले आगे बढ़ते हैं।)

काल०—भानुप्रताप, अरिमर्दन और मंत्री को पहिले भूमि पर सुला देवें। येही तीनों जड़ हैं, शेष सब सेना हमारी ही है। (आगे बढ़ता है)

(पीछे राजा भानुप्रताप तथा उसके सेनापतियों का प्रवेश।)

राजा भा०प्र०—(धनुष वाण लिये बड़े दर्प के साथ) (अरिमर्दन से) अरिमर्दन! शत्रुओं की सेना वह देखो आ रही है, (सेनापति तथा मंत्री से) चलो हमलोग पीछे से इस पर आक्रमण करें।

मंत्री, अरिमर्दन और सेनापति—बहुत ठीक, चलो, हे वीरगणो! हमलोग इन दुष्टों को चलो पीछे से आक्रमण कर मारें। चन्द्रसेन और कालकेतु का तो सिर ही छेदन करना चाहिए; चलो! चलो!!

(सब जाते हैं और शत्रु सेना के पीछे हो जाते हैं)

(जिधर दोनों सेना जाती हैं उधर से एक ब्राह्मण और उसके लड़के का प्रवेश)

बालक—बाबा! ये दो भीर लोगों की धनुष बान खांड़ा कटार आदि अनेक प्रकार हथियार ली हुई काहे को आगे पीछे दौड़ रही है?

पिता—बेटा, यह लड़ाई है, देखो अब छिड़ती है।

बालक—यह किस की २ लड़ाई है?

पिता—बेटा! राजा भानुप्रताप और उसके पुराने हरेल दुश्मनों की है।

बालक—बाबा! भानुप्रताप कौन है और उसकी सेना कहां है?

पिता—यह जो पीछे का दल जा रहा है यही भानुप्रताप की सेना है और उसे भानुप्रताप सब से आगे रथ पर चढ़े धनुष बान लिये चुपचाप एक दम शत्रुओं पर छापा मारने की इच्छा से ले जा रहा है। भाई को सेना के पीछे और सेनापति तथा मंत्री को दहिने बाएँ रक्खा है।

बालक—बाबा ! पुराने शत्रु इस राजा के के हैं ? उनकी सेना तो अधिक और नये उत्साह और नवीन वीरता से भरी मालूम होती है।

पिता—शत्रु तो कई हैं पर मुख्य दो हैं १ चन्द्रसेन २ कालकेतु। क्या तूने नहीं देखा, पहिले के दल में जो सब से आगे है वह तो चन्द्रसेन है और जो सब के पीछे सेना को अनेक प्रकार की उत्तेजना देता हुआ बड़े दर्प से जा रहा है, वही कालकेतु है।

बालक—पिता, भानुप्रताप तथा उसकी सेना तो उलटे पीछे हो गई और वे क्यों नगर की ओर ही दौड़े जा रहे हैं ?

पिता—उनको मालूम नहीं है कि भानुप्रताप हमारे पीछे आ गया है।

बालक—बाबा ! मुझको तो अब दीखता नहीं, कैसे करूं

मैं इस वृक्ष पर चढ़ूंगा, चढ़ा दो।

पिता—अच्छा ले चढ़ जा (चढ़ाता है)

बालक—(जल्दी से) बाबा बाबा ! चन्द्रसेन और कालकेतु को राजा भानुप्रताप की धोखेबाजी मालूम हो गई। उन्होंने नगर की तरफ का जाना छोड़ राजा की ओर मुंह फेरा और राजा भा०प्र० की सेना से मुठभेड़ हो गई। बाबा ! बड़ा युद्ध होने लगा, कोई किसी को नहीं देखता है, खाली मारा मारी हो रही है।

पिता—(अँगूठे के बल खड़े होकर) हां बेटा, युद्ध होने लगा। शत्रुओं की सेना बड़ी बलवती मालूम होती है क्योंकि इधर (इंगित करके) देख, भानुप्रताप की सेना आँख बचा २ भागती जाती है।

बालक—सचमुच, ये लोग हारकर भागते हैं। बाबा ! युद्ध मैंने कभी नहीं देखा था मुझ को तो डर लगता है।

पिता—बेटा, कुछ डर नहीं है, वह देख चन्द्रसेन को, जो अरिमर्दन की तीरों की बौछार का कुछ भी ख्याल न कर राजा भानुप्रताप के साम्हने ही जा रहा है और देखो वह पहुंच ही गया।

बालक—बाबा ! कालकेतु को देखो, किनारे २ क्यों और कहां खाँड़ा लेकर दौड़ता जा रहा है ?

पिता—बेटा ! राजा भानुप्रताप का समय बदल गया है नहीं तो उसके नायकगण कभी पाँव पीछे न धरते। उसका दल पतझड़ का पीपल हो गया न, हाय !

बालक—बाबा, कालकेतु ने अरिमर्दन को खाँड़े से मार डाला और मंत्री की ओर दौड़ा जा रहा है।

पिता—अरे उधर तो देख, चन्द्रसेन ने भानुप्रताप को क्या कर डाला और कितने योद्धा उसपर शस्त्र चला रहे हैं !

बालक—ऐ बाबा (रो करके) राजा भानुप्रताप रथ से गिर पड़े।

पिता—चुप रह रे! हाय! राजा भानुप्रताप! हाय! तू ने क्यों इन दुष्टों से विरोध किया, हाय, मंत्री धर्मरुचि! तुमने क्यों राजा को सिखापन न दिया, हाय! अरिमर्दन, तुम भी न रहे। हाय! अब कैकयदेश डूब गया भानु अस्त हो गया, संसार सूना और अँधेरा हो गया! हाय, उतर बेटा चल, घर को चलें। अब यहां हमारा दुःख कौन सुने। (दोनों जाते हैं)

(उसी वीर वेष में कालकेतु तथा चन्द्रसेन आदि का प्रवेश)

कालकेतु, चन्द्रसेन—बस हमारी जय है, जय! जय! जय! दुष्टों का नाश हो गया, चलो अब निष्कण्टक राज्य करें। (सब जाते हैं) पटाक्षेप।

इति तृतीय गर्भाङ्क॥ इति पञ्चम अङ्क समाप्त हुआ॥